गुरुदत्त
धर्मवीर
हकीकत राय

अगर हिन्दुओं में है कुछ जान बाकी,
शहीदों बुजुर्गों की पहचान बाकी।
शहादत हकीकत की मत भूल जाएँ,
श्रद्धा से फूल उस पर अब भी चढ़ाएँ।।

—डा० गोकुल चन्द नारंग

इस माला के अन्तर्गत किशोरों के लिए न केवल रोचक और आकर्षक पुस्तकें प्रकाशित करना प्रत्युत प्रेरणाप्रद पुस्तकें प्रस्तुत करना यही हमारा उद्देश्य है।

रंजन पॉकेट बुक्स

नई दिल्ली

धर्मवीर हकीकतराय

गुरुदत्त

भूमिका

संवत् ७६९ विक्रमी में हिन्दुस्थान पर इस्लाम का प्रथम आक्रमण हुआ था, जिसे कुछ अंशों में ही सफल आक्रमण कहा जा सकता है। यह आक्रमण समुद्र के मार्ग से किया गया था और भारत के पश्चिमी भाग सिन्ध देश पर हुआ था।

इससे पूर्व भी इस देश पर विदेशी आक्रमण होते रहे थे, किन्तु इस्लाम का यह आक्रमण उन सबसे भिन्न था। इस आक्रमण का उद्देश्य केवल भारत देश की धन-सम्पत्ति पर अधिकार करना मात्र नहीं अपितु इससे भी कहीं अधिक था। देश पर अधिकार करना उस आक्रमण का एक उद्देश्य होने पर भी उसका कारण कुछ और ही था। वह कारण था, इस देश में 'इस्लाम' का प्रचार करना। यही कारण है कि यह आक्रमण बगदाद स्थित इस्लाम के खलीफा की ओर से किया गया था।

खलीफा न केवल बगदाद का शासक ही था अपितु वह इसके अतिरिक्त इस्लाम, जो मजहब के रूप में विद्यमान है, का कर्णधार भी था। वास्तव में बगदाद में उसकी नियुक्ति भी इसी प्रकार द्विविध उद्देश्य के लिए की गई थी। एक तो उस प्रदेश पर शासन करना और दूसरे उस प्रदेश में इस्लाम का प्रचार-प्रसार करना।

इस्लाम एक मजहब है। इस मजहब का प्रचलन मक्का-निवासी मोहम्मद ने किया था, जो स्वयं को परमात्मा का पैगाम लाने वाला—सन्देशवाहक—कहता था। इसी कारण वह

कालान्तर में पैगम्बर कहलाने लगा और आज वह इसी नाम से जाना जाता है।

मोहम्मद साहब का यह सौभाग्य था कि उनका विवाह एक धनी महिला से हो गया था। इस कारण उनको आजीविका की किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं रही। परिणामस्वरूप उनके मस्तिष्क में भांति-भांति की कल्पनाएँ उड़ान भरने लगीं। इस प्रकार कई वर्ष तक चिन्तन करने के उपरान्त स्वयं को परमात्मा का सन्देशवाहक 'पैगम्बर' घोषित कर दिया। इस घोषणा के साथ ही अपने कल्पित परमात्मा और उसके सन्देश को सुनाना आरम्भ किया तो वह 'पैगम्बर' के रूप में विख्यात हो गया।

अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ उसने अपनी एक निजी सेना भी गठित करनी आरम्भ कर दी और समय पाकर वह इसके लिए युद्ध भी करने लगा। इस प्रकार मोहम्मद साहब ने परमात्मा और मनुष्य के रहन-सहन आदि-आदि के विषय में अपनी एक धारणा बनाई और अपने विचारों को अपनी उस निजी सेना के बल पर जन-साधारण पर थोपना आरम्भ कर दिया।

आरम्भ में जैसाकि स्वाभाविक है, मोहम्मद साहब को अपने इस कार्य में अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं हुई। विपरीत इसके उनको अपना पैतृक स्थान मक्का छोड़ भागकर मदीना जाना पड़ा था। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी स्थिति पर विचार किया और फिर अपने सैनिकों को अधिक प्रोत्साहन दिया, उनको अनेक प्रकार की सुविधाएं देने का आश्वासन दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि उसके सैनिक अधिक उत्साह से जन-साधारण पर बल-प्रयोग करने लगे।

मोहम्मद ने, जो अब हजरत मोहम्मद कहे जाने लगे थे, अपने सैनिकों में घोषणा कर दी कि जिस किसी नगर, कबीला आदि

के लोग उनको पैगम्बर रूप में स्वीकार नहीं करते वे उस पर आक्रमण कर दें। उनको यह अधिकार दिया गया कि वे उस स्थान से धन-सम्पत्ति, मकान, खेमे, आभूषण अथवा औरतें जो कुछ भी देखें अपने अधिकार में कर लें, उन्हें लूट लें, जिस प्रकार चाहें और जो चाहें वे सब वह अपने अधिकार में कर लें। उस लूट और अधिकार का पाँचवाँ भाग वे हजरत मोहम्मद को नजर कर शेष सब कुछ को परमात्मा की ओर से दिया गया समझकर उस पर अपना पूर्ण अधिकार समझें।

इस घोषणा से मोहम्मद साहब के सैनिकों के मन उछल पड़े। उनके लिए यह बहुत बड़ा आकर्षण सिद्ध हुआ और मोहम्मद साहब के लिए भी बहुत बड़ी सफलता का कारण सिद्ध हुआ। मोहम्मद साहब की ओर से उनको किसी प्रकार का वेतन नहीं मिलता था। जो भी उनको परमात्मा का पैगम्बर स्वीकार कर लेता उसको ही सेना में भरती होने का अवसर प्राप्त हो जाता था। अतः मदीना में बेकार घूमने वाले सभी मोहम्मद के सेवक बन गए और फिर झुण्ड-के-झुण्ड बनाकर आस-पास के नगरों, कबीलों, गाँवों और घरों पर आक्रमण करने लगे। धन-सम्पत्ति और महिलाओं को लूटने का ऐसा आकर्षण था कि वे बेकार लोग प्राण-पण से आक्रमण करते और जितना अधिक-से-अधिक लूट मचा सकते थे, अत्याचार कर सकते थे, वह सब करते।

इस आक्रमण और लूट में उनको जो कुछ भी प्राप्त होता था उसका पाँचवाँ भाग वे मोहम्मद को नज़र कर देते और शेष भाग के स्वयं स्वामी बनकर उसका उपभोग करते।

इस प्रकार मोहम्मद साहब का राज्य वृद्धि करने लगा। जो भी क्षेत्र मोहम्मद के अधीन हो जाता उसके निवासियों को न केवल मोहम्मद को अपना शासक स्वीकार करना पड़ता था अपितु उनको मोहम्मद के मजहबी विचारों को भी मानना

पड़ता था। उन विचारों में जो मुख्य बात थी वह यह कि 'मोहम्मद रसूल इलाही है' अर्थात् मोहम्मद इस संसार में परमात्मा के पैगम्बर के रूप में प्रकट हुआ है।

मोहम्मद के ऐसे कृत्यों के आधार पर ही प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक 'गिब्बन' ने लिखा था—'इस्लाम एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में कुरआन लेकर विस्तार पा रहा है।'

इस आक्रमण और विचार-प्रसार का यह परिणाम हुआ कि मोहम्मद के जीवनकाल में ही उनका एक राज्य स्थापित हो गया था। मोहम्मद की दृष्टि में अपना राज्य और अपना दीन (मजहब) दोनों एक ही बात थे।

मिस्र देश में एक लेखक हुए हैं—प्रो० इनान। उन्होंने अपनी पुस्तक 'दि डिसाइसिव मोमेंट्स इन दि हिस्ट्री ऑफ इस्लाम'[1] में लिखा है कि जब मोहम्मद साहब का राज्य स्थापित हो गया तो उन्होंने अपने आस-पास के राज्यों को लिखा कि वे उसके राज्य से सम्बन्ध स्थापित कर लें। किन्तु उसमें उन्होंने यह शर्त भी रख दी थी कि वे 'दीने-इस्लाम' को भी स्वीकार करें। यदि वे मोहम्मद को परमात्मा का दूत स्वीकार करें तो यह मान लिया जाएगा कि उस राज्य को मोहम्मद के राज्य से मित्रता है। अन्यथा उस राज्य को शत्रु-राज्य माना जाएगा।

इससे स्पष्ट लक्षित होता है कि मोहम्मद अपने जीवनकाल में स्वयं ही राज्य और मजहब को एक ही बात मानता था।

प्रो० इनान ने यह तो नहीं लिखा कि मोहम्मद साहब की 'मित्रता' के इस निमन्त्रण को उसके समीपवर्ती किस-किस राज्य ने स्वीकार कर लिया और किस-किस ने इसको अस्वीकार किया। किन्तु उसने यह अवश्य लिखा है कि अपने किस-किस पड़ोसी देश को हज़रत मोहम्मद ने इस प्रकार का 'मैत्री' सन्देश

---

१. इस्लाम के इतिहास में निर्णयात्मक क्षण।

अथवा निमन्त्रण भेजा था।

मोहम्मद के देहान्त के उपरान्त उनके राज्य के प्रबन्धकर्त्ता को 'खलीफा' की उपाधि दी गई और उसका यह कर्तव्य माना गया कि वह मोहम्मद साहब के पद-चिह्नों पर चलकर उनके राज्य का शासन करे और उसकी वृद्धि भी करे।

इस प्रकार खलीफाओं का शासन चलता रहा। कुछ कालोपरान्त, जब तीसरे खलीफा के शासनकाल में ईरान में इस्लामी राज्य स्थापित हुआ तो खलीफा ने अरब के रेतीले प्रदेश को छोड़ दिया और ईराक की राजधानी बगदाद को ही अपनी राजधानी घोषित कर दिया।

खलीफा हारूँ रशीद के शासनकाल में उसके सिपहसालार मोहम्मद-बिन-कासिम ने भारत के सिन्ध प्रदेश में आक्रमण किया। भारत पर यह उसका प्रथम सफल आक्रमण सिद्ध हुआ। यद्यपि इससे पूर्व भी भारत को धन-धान्य से सम्पन्न देश मानकर खलीफा की ओर से आक्रमण करने के यत्न हुए थे, किन्तु वह मोहम्मद-बिन-कासिम ही था जो आक्रमण में सफल हुआ और उसने सिन्ध को पार कर भारत के कुछ भू-भाग पर खलीफा का शासन स्थापित कर लिया।

भारत की ओर से उसको अधिक सहायता नहीं मिली, इस कारण अधिक समय तक खलीफा के सैनिक सिन्ध में ठहर नहीं सके। मोहम्मद-बिन-कासिम को थोड़ी-बहुत जो सफलता हुई थी उसके विषय में भी यही माना जाता था कि वहाँ के बौद्धों ने उसकी सहायता की थी।

ईरान पर भली प्रकार राज्य स्थापित कर लेने पर दूसरी सफलता जो खलीफा को प्राप्त हुई वह अफगानिस्तान में प्राप्त हुई थी। उसका कारण भी यह माना जाता है कि जिस समय खलीफा की ओर से अफगानिस्तान पर आक्रमण किया गया था, उस समय वहाँ पर बौद्धों का शासन था। अतः अहिंसा के

उपासक बौद्ध, आततायी और हिंसक खलीफा के सैनिकों को अहिंसा और शान्ति का पाठ पढ़ाने में असफल सिद्ध हुए और इस प्रकार इस्लाम के दास बन गए।

इस पुस्तिका में हम जिस धर्मवीर हकीकतराय की जीवन-गाथा का उल्लेख कर रहे हैं उसके उत्पन्न होने तक उत्तरी भारत में इस्लामी राज्य पूर्णतया स्थापित हो चुका था।

डा० गोकुलचन्द नारंग, जो कि इतिहास के अध्यापक रह चुके हैं, का कहना है कि धर्मवीर हकीकत राय के बलिदान की घटना फारुख सीयर के काल की है।

इस प्रसंग में हम इतना और बता देना आवश्यक समझते हैं कि हजरत मोहम्मद से आरम्भ करके साधारण-से-साधारण मुसलमान अधिकारी भी राज्य और मजहब को परस्पर सम्बन्धित ही मानते रहे हैं। राज्य को मजहब का एक शस्त्र मात्र माना जाता था। यही कारण है कि तब से लेकर आज तक सभी इस्लामी देशों में राज्य-बल के आश्रय मजहब का प्रसार किया जाता रहा है।

इसका यह प्रमाण है कि आज के इस आधुनिक कहे जाने वाले युग में भी ईरान, ईराक, फिलिस्तीन, मिस्र और अरब आदि सभी इस्लामी देशों में किसी 'गैर-मुसलमान' को मुसलमान की भांति समान-नागरिक नहीं माना जाता और न उसको उस प्रकार के अधिकार ही प्राप्त हैं। पाकिस्तान में भी मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य नागरिकों को द्वितीय श्रेणी का नागरिक माना जाता है।

हकीकतराय के साथ जो कुछ भी दुर्घटना हुई है, उसका सम्बन्ध इस्लामी राज्य की इसी वस्तुस्थिति से है। हकीकत की हत्या का सारा दोष हम उस समय में भारत में रहने वाले उन कोटि-कोटि हिन्दुओं को ही देते हैं कि जो अपने धर्म पर अटूट आस्था रखने वाले एक हिन्दू बालक के जीवन की रक्षा करने में

सर्वथा असमर्थ रहे।

यह भी अत्यन्त विस्मय का विषय है कि कोटि-कोटि हिन्दुओं पर कुछ सहस्र क्रूर स्वभाव वाले मुसलमान राज्य करते रहे थे।

धर्मवीर हकीकतराय के जिस बलिदान की चर्चा हम इस पुस्तक में कर रहे हैं, उसका दोष और पूर्ण उत्तरदायित्व उन क्रूर मुसलमान अधिकारियों पर ही नहीं डाल सकते। हमारी दृष्टि में उनसे अधिक तो इसके लिए इस देश की हिन्दू जनता उत्तरदायी और दोषी है।

यह घटना तत्कालीन पश्चिमी पंजाब के सियालकोट नगर की है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस समय भी वहाँ के हिन्दू नागरिकों की संख्या वहाँ पर विद्यमान मुसलमान अधिकारियों से कहीं अधिक थी। वे सब रोते और शोक मनाते तो रहे, किन्तु उनकी आँखों के सम्मुख जो अन्याय और अत्याचार हुआ उसका प्रतिकार लेने के लिए वहाँ की हिन्दू प्रजा तैयार नहीं हो सकी।

इसका स्वल्प कारण तो जन्म से वर्ण-धर्म को मानना भी है। इसके अतिरिक्त भी उस समय तक हिन्दू समाज में बौद्ध और जैन मतावलम्बियों द्वारा प्रचारित अहिंसा की भ्रान्त कल्पना समाविष्ट हो गई थी, वह इसका बहुत बड़ा कारण सिद्ध हुई है।

इससे भी बढ़कर जो कारण हम समझते हैं वह यह था कि उस समय तक हिन्दू समाज की आस्था वेदादि शास्त्रों से हट कर कपोल कल्पित पुराणों पर टिक गई थी।

पुराणों की शिक्षा का सबसे बड़ा दोष यही है कि उनसे प्रजा को अपने अधिकारों की रक्षा की प्रेरणा नहीं मिलती, इसके विपरीत यह धारणा जड़ जमा चुकी थी कि 'आततायी को दण्ड देने के लिए समय-समय पर भगवान् जन्म लेता रहा है।'

अवतारवाद में टिकी हुई हिन्दुओं की यह आस्था ही इस

प्रकार की लज्जास्पद घटनाओं के लिए उत्तरदायी थी। उस समय की जनता मन्दिरों में बैठकर घण्टों तक घण्टे-घड़ियाल बजाकर परमात्मा से सहायता के लिए प्रार्थना करती रहती थी। वे समझते थे कि उनकी इस निरन्तर प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् अवतार धारण करेंगे और इसी प्रतीक्षा में उनका जीवन समाप्त हो जाता था। उस अवधि में आततायी उन पर, उनके बच्चों पर और उनकी महिलाओं पर अत्याचार और अनाचार करते रहते थे।

सियालकोट में भी यही सब कुछ हुआ था। वहाँ पर कुछ मुल्ला और मुसलमान सिपाही वहाँ रहने वाले लाखों हिन्दुओं पर शासन करते थे।

प्राचीनकाल में, आर्यों में इस प्रकार के विचारों का प्रसार नहीं था। आर्यों की तो यही शिक्षा थी कि आततायी का सिर फोड़ कर उसको यमलोक पहुँचा दो। उनका यही सिद्धान्त था कि आततायी का अत्याचार सहन करने वाला भी उतना ही अपराधी है जितना कि आततायी।

हमारा अभिप्राय यह है कि हकीकत राय के साथ हुई दुर्घटना में जहाँ एक ओर आततायी मुसलमान अथवा इस्लाम मजहब के अनुयायी दोषी हैं वहाँ दूसरी ओर इस्लाम को न मानने वाले भी उतने ही दोषी हैं। हत्यारों को क्षमा योग्य मानना यह बहुत बड़ा दोष है। इसी प्रकार हिन्दू समाज भी दोषी है कि इतनी बड़ी संख्या में होने पर भी जो अपने अधिकार की रक्षा के लिए तनिक भी यत्न नहीं कर सका। अत्याचार का प्रतिकार नहीं ले सका।

हिन्दू समाज में पूजा-पद्धति सर्वथा व्यक्तिगत प्रश्न समझा जाता था। इस पर किसी को भी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती थी। एक ही घर और परिवार में विभिन्न मताव-लम्बियों का निवास होता था और वे सभी सुख और शान्ति से

रहते थे तथा आज भी रहते हैं। कभी किसी ने अपनी मान्यता को किसी अन्य पर बलपूर्वक नहीं लादा है।

हिन्दू शास्त्र का यह मान्य सिद्धान्त है :

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वाचैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

अर्थात् सम्पूर्ण धर्म का सार सुनो और सुनकर उसको भली-भांति धारण करो। वह यह कि जिस व्यवहार को तुम स्वयं अपने साथ उचित नहीं समझते, वैसा व्यवहार कभी दूसरों के साथ भी मत करो।

इस्लाम आदि अन्य मजहबों में इस प्रकार की धारणा है ही नहीं। इस्लाम में तो यही है कि 'मुसलमान ऐसा मानते हैं, इस कारण सबको ऐसा ही मानना चाहिए। और यदि कोई ऐसा नहीं मानेगा तो अपनी सामर्थ्य रखते हुए हम उसको अपनी तलवार की धार से समाप्त कर देंगे।'

इस प्रकार ये दो परस्पर विरोधी व्यवहार हैं। हिन्दू समाज को अपनी उक्त धारणा का स्वाभाविक अर्थ यह भी समझ लेना चाहिए कि जो हमारे साथ वैसा व्यवहार नहीं करता जैसा अपने साथ चाहता है तो वह हमारा विरोधी है और विरोधी को अनुकूल करने के लिए प्रयुक्त होने वाले सभी प्रकार के उपाय वैध ही हैं।

जिस इतिहास का वर्णन हम आगे के पृष्ठों पर कर रहे हैं, वह इस सत्य का ज्वलन्त प्रमाण और उदाहरण है कि हिन्दू समाज धर्म के सार को भूल गया था, इस कारण इस प्रकार की दुर्घटनाएं उसके घटकों के साथ होती रही हैं और आज भी होती ही हैं।

किन्तु हकीकतराय उन हिन्दुओं में नहीं गिना जा सकता,

जिन्होंने अपने अधिकार को छोड़ दिया अथवा जो अपना अधिकार भी भूल चुके थे। हकीकत ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी।

वसन्त पंचमी : २०४१ —गुरुदत्त

डे वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

आचार्य धर्मवीर आर्य

१

पश्चिमी पंजाब के एक नगर सियालकोट में भागमल नाम के एक व्यापारी रहते थे। उनका एक ही पुत्र था, जिसका नाम हकीकतराय था।

घटनाक्रम पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि लाला भागमल के घर का रहन-सहन सरल रहा होगा और हिन्दू धर्म की मुख्य आस्थाओं पर विश्वास सुदृढ़ और अटूट रहा होगा।

हिन्दू धर्म की सामान्य आस्थाएँ और विश्वास यही है कि परमात्मा एक है, जो न्यायकारी, सर्वज्ञ, सर्व-व्यापक तथा महान् शक्तिशाली है।

हिन्दू धर्म की यह भी मान्यता रही है कि मनुष्य का वर्तमान-जन्म तो जीवात्मा के जीवनकाल का एक छोटा-सा अंश है। अपने कर्मफल के अनुसार यह जीवात्मा तब तक जन्म ग्रहण करता रहता है जब तक कि इसके पुण्यकर्म इतने प्रबल नहीं हो जाते कि उसको मोक्ष की प्राप्ति हो जाए। इसके लिए समय-समय पर मनुष्य प्राणी को उपदेश दिया जाता है कि वह सत्कर्मी, सत्यवक्ता, इन्द्रिय-निग्रही, धैर्यवान, क्षमाशील, शुद्ध और न्याययुक्त व्यवहार करने वाला, आत्मसम्मान की रक्षा करने वाला, ज्ञान और बुद्धि की उन्नति में निरन्तर प्रयत्नशील, क्रोध और लोभ आदि न करने वाला बने। उसको कहा जाता है कि ये सब आचार और व्यवहार मनुष्य को मोक्ष-पद की ओर

अवसर करते हैं और मोक्ष प्राप्त करना ही जीवात्मा का मुख्य ध्येय है।

हिन्दुओं की यह भी मान्यता है कि पार्थिव शरीर तो आत्मा को पहनाए गए वस्त्रों के समान ही है। जिस प्रकार वस्त्र फटकर फेंक दिया जाता है वैसे ही मरने पर जीवात्मा को तो अन्य नया शरीर मिल जाता है। मानो पुराने वस्त्र उतार कर नये धारण कर लिये हों। आत्मा कभी मरता नहीं। उसका मरना और पुनः जन्म लेना वस्त्र बदलने के समान ही है।

उसकी यह भी मान्यता है कि प्राणी को जो नया शरीर प्राप्त होता है वह उसके पूर्वजन्म के कर्मफलों के आधार पर ही मिलता है। अतः हिन्दू मरने से डरता नहीं, उसे इसमें किसी प्रकार का भय नहीं दिखाई देता। सत्कर्म करने वाला मरने पर उसी प्रकार प्रसन्न होता है जिस प्रकार पुराने वस्त्र त्यागकर नये वस्त्र धारण करने की प्रसन्नता होती है।

हिन्दू यह मानता है कि सांसारिक कष्ट और पीड़ा शरीर को ही होती है। यह कष्ट और पीड़ा उन आत्माओं को ही होते हैं जो शरीर को ही अपना आप मानने लगते हैं। वास्तव में कर्म करने वाला तो जीवात्मा है और उसका फल भोगने वाला भी वही है। यदि जीवात्मा का व्यवहार धर्मयुक्त हो तो उसको शरीर का कष्ट होता ही नहीं।

हिन्दुओं की यह मान्यता है कि परमात्मा सर्वव्यापक और सर्वद्रष्टा है। उसकी दृष्टि से किसी भी जीवात्मा का किसी भी प्रकार का व्यवहार छिपा नहीं रहता। इस कारण वह सबके धर्मपरायण कर्म को देखता है और फिर तद्नुसार उसका फल भी प्रदान करता है।

हकीकतराय को जब सियालकोट के काजी के सम्मुख उपस्थित किया गया तो उसने उस अवसर पर जो विचार व्यक्त किए थे उनसे यही सिद्ध होता है कि उनके घर में उनका कुल-

पुरोहित अथवा घर का ही कोई व्यक्ति श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ और अध्ययन करता-कराता रहा होगा।

गीता में कहा गया है—

> **अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।**
> **विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥२-१७॥**

अर्थात्—उसे नाशरहित ही समझो जो इस पूर्ण जगत् में विद्यमान है। उस अविनाशी का नाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

और भी कहा है—

> **अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।**
> **अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥**
> **न जायते म्रियते वा कदाचित्**
> **नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।**
> **अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो**
> **न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२-१८,२०॥**

अर्थात्—यह देह अन्त होने वाली है। शरीर में आत्मा अप्रमेय और नित्य है। इस कारण हे अर्जुन! युद्ध कर, मरने से न डर।

क्योंकि यह जीवात्मा न तो कभी उत्पन्न हुआ है, न कभी मरता है। न ही मर कर फिर होने वाला है। यह आत्मा अजन्मा, सदा रहने वाला, मारा नहीं जाता। मरता तो शरीर है।

हकीकतराय ने अपने घर पर गीता का अध्ययन करते हुए अथवा सुनते हुए इस पर भी ध्यान दिया होगा—

> **वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**
> **नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
> **तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि**
> **अन्यानि संयाति नवानि देही ॥**

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

॥भ० गी० २-२२,२३॥

अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र पहन लेता है वैसे ही यह देही पुराने शरीर को उतारकर नया शरीर ग्रहण कर लेता है।

इस आत्मा को न तो शस्त्र काटता है, न इसको अग्नि जलाती है। न इसको जल गलाता है और न इसको हवा सुखाती है।

हकीकतराय ने जिस प्रकार का व्यवहार काजियों और हाकिमों के सम्मुख अपनाया था उससे ही यह स्पष्ट होता है कि गीता में वर्णित इन विचारों को उसने भली-भांति सुना और समझा हुआ था।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि वह प्रखर बुद्धि वाला बालक था। जब वह मुल्ला के मकतब में पढ़ने के लिए गया तो वह मुल्ला की पढ़ाई को तत्काल ही हृदयंगम करने लग गया था।

यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐसे बुद्धिशील बालक को मुल्ला के पास पढ़ने के लिए किसलिए भेजा गया था? वह भी ऐसे परिवार के बालक को जिसमें आत्मा और शरीर के सम्बन्ध में जानने वाले घटक हों। ऐसे परिवार के एक होनहार, प्रतिभाशाली बालक को अरबी और फारसी पढ़ने के लिए मतान्ध मुल्ला के मकतब में क्यों प्रविष्ट कराया गया होगा? पाठकों के मन को इस प्रकार के प्रश्न अवश्य उद्वेलित कर सकते हैं।

हिन्दू समाज के पतन का इतिहास ही ऐसे प्रश्नों का उत्तर हो सकता है। उस समय तक लगभग एक सहस्त्र वर्ष से भी अधिक काल तक हिन्दू समाज विदेशियों और विधर्मियों के

राज्य में रहते-रहते अपने मन में हीन-भावना को स्थापित कर चुका था।

इस हीन-भावना की जड़ में ब्राह्मणों का अपने कर्म से च्युत होना मुख्य कारण है। बौद्धकाल से पहले तक तो भारत अन्य देशों की तुलना मे ज्ञान-विज्ञान में बहुत उन्नत था।

पुराणकालीन इतिहास में यह वर्णन पाया जाता है कि भारतवर्ष में न केवल वायुयानों की ही उड़ान होती थी, अपितु यहाँ तोप और बन्दूकों का भी प्रचलन था, यहाँ के रथ अति-वेगगामी होते थे। युद्ध में प्रयुक्त किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र यहाँ विद्यमान थे। ऐसे राजा-महाराजा भी इस देश में राज कर चुके थे जो आकाशचारी कहलाते थे। अर्थात् वे अपनी यात्रा आकाश-मार्ग से किया करते थे।

आज के पाठक, विशेषतया पाश्चात्य सभ्यता में पले और उसी में अभिभूत हुए पाठक, इन पौराणिक गाथाओं को मिथ्या और केवल कपोल-कल्पना मात्र मानते हैं। इसके लिए उनके पास एकमात्र यही युक्ति है कि बौद्ध सम्राट् अशोक के उपरान्त जब इस देश पर विदेशीय आक्रमण हुआ तो उस समय वे सब शस्त्रास्त्र और यान आदि, जिनका कि पुराणों में इतना उल्लेख है, कहाँ चले गए थे? उन दिव्यास्त्रों को क्या हो गया था और वे यान किस पत्तन पर पड़े रह गए थे? वे सब कहाँ विलुप्त हो गए थे?

इस प्रश्न का यही उत्तर हो सकता है कि बौद्धकाल में और उसके उपरान्त भी शिक्षकों के अभाव में ज्ञान-विज्ञान और व्यावहारिक ज्ञान का भी लोप हो चुका था। यही एकमात्र कारण था कि विदेशी आक्रमण के समय कोई इनको उपलब्ध नहीं करा सका।

शिक्षकों के अभाव में सामान्य जनता जड़वत् हो गई थी। विज्ञान की शिक्षा तो उस विद्या के विद्वान् ही दे सकते थे जिससे

कि तकनीशियन उस विज्ञान का प्रयोग कर हिन्दू जाति को शक्ति और सम्पदा से सम्पन्न कर सकते।

जब से इस देश में इस मान्यता का प्रचलन हुआ कि ब्राह्मण के कुल अथवा घर में उत्पन्न, अर्थात् ब्राह्मण पिता की ब्राह्मण पत्नी से उत्पन्न बालक ही ब्राह्मण हो सकता है, उसे ही वेद-शास्त्र आदि पढ़ने का अधिकार है, उसी समय से ब्रह्मविद्या और ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का लोप आरम्भ हो गया। जब से ब्राह्मण-सन्तान को अनायास ही मान-प्रतिष्ठा और दक्षिणा मिलने लगी तभी से वह सुविधाप्रेमी और ज्ञान-विज्ञान-विहीन होती गई।

महाभारत के कथाकारों के समय तक यह प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। महाभारत का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि उनके ज्ञान की सीमा बहुत ही संकुचित हो चुकी थी। उसका परिणाम यह हुआ कि अपनी कथाओं के वर्णन में वे उसका भावार्थ भी स्पष्ट नहीं कर पाए।

इस प्रकार जब ब्राह्मणों को जन्म से ब्राह्मण माना गया और जन्म के कारण ही उनकी प्रतिष्ठा होने लगी तो इससे ज्ञान का लोप होना सहज और स्वाभाविक हो गया।

विद्वान् ब्राह्मणों की सृष्टि न होने पर भारत में ज्ञान-विज्ञान का लोप हो जाना भी स्वाभाविक ही था।

जिस समय का हम इतिहास लिख रहे हैं वह मुसलमानों का राज्यकाल था। उस समय तक भारत की सामान्य जनता सर्वथा अपढ़ हो चुकी थी। उसका भी मुख्य कारण यही था कि पढ़ना-पढ़ाना केवल एक समुदाय अथवा जाति-विशेष के हाथ अथवा अधिकार तक ही सीमित किया जा चुका था। समाज ने भी इस व्यवस्था को शनैः-शनैः स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार ज्ञान के सीमित हो जाने से वे भी ज्ञान और विज्ञान को भूल चुके थे।

उस समय तक ब्राह्मण केवल सत्यनारायण के कथा-वाचक मात्र रह गए थे। कथा भी ऐसी कि जिसमें न तो नारायण के किसी लोकोत्तर चरित्र का ही वर्णन है और न उसमें किसी प्रकार के सत्य का ही निरूपण किया गया है। वर्तमान में प्रचलित सत्यनारायण की कथा जो भारत के ह्रासोन्मुख काल से ही चली आ रही है, उसमें केवल मात्र एक पतिव्रता नारी की जीवनचर्या का अति संक्षिप्त और अति अस्पष्ट-सा वर्णन ही है, अन्य कुछ नहीं। हिन्दू समाज में ऐसी अर्थहीन कथाओं के वाचक ही शेष रह गए थे।

तत्कालीन पंजाब के हिन्दुओं की शिक्षा तो इतनी कम थी कि वे अपने कारोबार के बहीखाते भी उस लुण्डी लिपि में लिखते थे जो कि सर्वथा अपूर्ण थी।

इस लुण्डी लिपि में केवल बारह अक्षर होते हैं। उसमें स्वरों का नितान्त अभाव है। मात्रा का प्रयोग तो होता ही नहीं। उसमें यदि लिखा जाए 'लालाजी अजमेर गए हैं' तो पढ़ने वाला उसको इसी रूप में न पढ़कर अपनी बुद्धि से उसको 'लाला जी आज मर गए हैं' यह भी पढ़ सकता है। उसका यह पढ़ना किसी प्रकार भी अशुद्ध नहीं माना जाएगा। उस लिपि में यदि 'टूटी-टाटी टोकरी' लिखा जाए तो पढ़ने वाला उसको बड़ी सरलता से 'टट-टट टकर' पढ़ सकता है।

इसका परिणाम यह होता था कि पत्र लिखने वाले का अभिप्राय कुछ और होता था और पढ़ने वाला कुछ और पढ़ लेता था। उसके फलस्वरूप अनेक घरों में जले दीपक बुझे मान लिये गए और अनेक घरों में बुझे दीपों को जला हुआ मान लिया गया।

न केवल वैश्य लोग इस लिपि में अपने बहीखाते ही रखते थे अपितु पत्र-व्यवहार भी किया करते थे। ब्राह्मण वर्ग के

अध्यापक इससे अधिक न कुछ पढ़ा सकते थे और न समझा ही सकते थे।

शिक्षा की जहाँ इस प्रकार की दशा हो वहाँ हकीकतराय जैसे मेधावी और प्रतिभावान्, श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त बालक को ग्यारह वर्ष की आयु में मुल्ला के मकतब में पढ़ने के लिए प्रविष्ट कराया था।

जैसा कि हम पहले भी संकेत कर आए हैं कि बालक हकीकत के घर का वातावरण संस्कारयुक्त था और उसको भागवत आदि की कथाएँ सुनने का अवसर सुलभ रहा था। उसको मुल्ला के मकतब में भेजा गया। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि वहाँ हिन्दू संस्कारों वाली कोई पाठशाला थी ही नहीं। यही कारण रहा होगा कि ऐसे संस्कारवान् और जन्म-मरण तथा आत्मा-परमात्मा के विषय में जानकारी रखने वाले बालक को मुल्ला के मकतब में अरबी, फारसी का अध्ययन करने जाना पड़ा था।

हकीकतराय के पिता लाल भागमल ने अनुभव किया होगा कि व्यापार में भी केवल लुण्डी लिपि का ज्ञान पर्याप्त नहीं है। विपरीत इसके वह अपूर्ण है। सम्भवतया उसका सम्पर्क तत्कालीन राज्याधिकारियों से होता होगा, उस अवसर पर उसको अपने पढ़ने-लिखने के ज्ञान की आवश्यकता अनुभव होती होगी और उस राजकीय भाषा का ज्ञान मुल्ला के मकतब में ही प्राप्त किया जा सकता था। लाला भागमल के सम्मुख यही विवशता होगी जिसके कारण उसे अपने प्रतिभावान् पुत्र को उस मकतब में प्रविष्ट कराना पड़ा होगा।

वर्तमान काल में भी इस प्रकार होता देखा जाता है। वेद-पाठियों की सन्तान उन स्कूलों और कालेजों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रविष्ट कराई जाती है जहाँ वेदों को और वेद के रचयिता ऋषियों को गाली दी जाती है।

इससे यही निष्कर्ष निष्पन्न होता है कि अध्यात्म शिक्षा के साथ-साथ व्यावहारिक शिक्षा का प्रबन्ध होना भी परमावश्यक है। हिन्दू समाज ने वर्तमान में पढ़ना-पढ़ाना केवल जन्मजात ब्राह्मणों के लिए नियत कर दिया है। जन्मजात ब्राह्मण के पास व्यावहारिक ज्ञान का अभाव हो गया था। उसका परिणाम यह हुआ कि दुर्गा भवानी के उपासक परिवार में उत्पन्न हकीकत-राय जैसे बालक को मतान्ध मुसलमान के मकतब में भेजा गया। सोचा यही गया होगा कि इससे वह उन्नति करेगा।

२

सांसारिक प्राणी के लिए जीवनयापन एक अनिवार्यता हो जाती है। जब सम्पूर्ण जाति में दोष व्याप्त हो जाता है तो देश में, राज्य में भी परिवर्तन हो जाता है। जाति के घटकों में जब व्यावहारिक ज्ञान का लोप हो जाता है तो उससे जाति में एक बहुत बड़ा दोष उत्पन्न हो जाता है।

वेद में जाति की तुलना एक शरीर के समान की गई है। मानव-शरीर को चार भागों में विभक्त किया गया। उसका एक भाग है सिर, दूसरा भाग है बांहें, उसका तीसरा भाग है पेट और चौथा भाग जंघा है। इसी प्रकार जाति के भी चार भाग वेद में किए गए हैं। इन भागों को वर्ण कहा जाता है। जिस प्रकार शरीर में सिर शीर्ष-स्थान पर है उसी प्रकार जाति में ब्राह्मण वर्ण को स्थान दिया गया है। शरीर में बाहु की भांति जाति में क्षत्रिय को माना गया है। जिस प्रकार शरीर में पेट का स्थान है वह स्थान जाति में वैश्य वर्ण को दिया गया है।

अन्तिम भाग जंघाओं का स्थान जाति में शूद्र वर्ण को दिया गया है।

जिस प्रकार शरीर के चार भागों के कार्य विभिन्न हैं, उसी प्रकार इन चार वर्णों के कार्य भी विभिन्न हैं। मानव-शरीर के सिर में चार ज्ञानेन्द्रियाँ हैं—आँख, कान, नाक और जिह्वा। इन चारों को ज्ञानेन्द्रियाँ कहा गया है। इन चारों के माध्यम से मनुष्य उसके आसपास की वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है।

मनुष्य अपनी आँख से वस्तुओं की रूप-राशि को देखता है। कानों के माध्यम से वह अपने आसपास होने वाली ध्वनि को सुनता है। नाक के माध्यम से सूंघने का कार्य होता है। जिह्वा के माध्यम से खट्टा, मीठा, कड़वा, तिक्त, लवण आदि रसों अथवा स्वाद का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार इन चारों ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से मनुष्य अपने आसपास की वस्तुओं और पदार्थों आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। एक अन्य पंचम ज्ञानेन्द्रिय भी है जो समस्त शरीर में व्याप्त है। उसे स्पर्शेन्द्रिय कहते हैं। यह त्वचा है। इसके स्पर्श से वस्तु अथवा पदार्थ के बाहरी गुणों का ज्ञान होता है।

मनुष्य के शरीर के शिरोभाग में भी चार ज्ञानेन्द्रियाँ बताई गई हैं।

इसी प्रकार मनुष्य-जाति में ज्ञान प्राप्त करने का कार्य ब्राह्मण वर्ण को दिया गया है। ब्राह्मण वर्ण के लोग समस्त जाति के लिए ज्ञान-संचय का कार्य करते हैं। शरीर के अंगों और जाति के अंगों में एक अन्तर भी है। वह यह कि जिस समय मनुष्य उत्पन्न होता है तब से आरम्भ कर उसके मरण-पर्यन्त वे एक ही कार्य करते हैं। वे अपने कार्य के अतिरिक्त कोई अन्य कार्य भी नहीं कर सकते।

यही बात ज्ञानेन्द्रियों के विषय में भी है। जो कार्य मनुष्य-शरीर के लिए ज्ञानेन्द्रियाँ करती हैं उस कार्य को उसके शरीर

की कोई अन्य इन्द्रिय नहीं कर सकती। अर्थात् कानों का कार्य श्रवण करना है, यह कार्य कान ही कर सकते हैं, शरीर का कोई अन्य अंग नहीं कर सकता।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि शरीर की ये चार ज्ञानेन्द्रियां —आंख, कान, नाक और जिह्वा अपना-अपना कार्य ही कर सकती हैं। परन्तु मनुष्य-समाज में तो मनुष्य विभिन्न वर्णों के कार्य करने के योग्य बनाये जा सकते हैं।

उदाहरण के रूप में, यदि ब्राह्मण के घर में उत्पन्न बालक को न तो किसी प्रकार की भाषा का ज्ञान कराया गया और उसके माध्यम से प्राप्त होने वाले किसी शास्त्र का ज्ञान न कराया जाए तो वह ब्राह्मण की सन्तान होने पर भी मूर्ख तो होगा ही कदाचित् चरित्रहीन भी हो जाए। अतः यह सिद्ध हुआ कि पण्डित सोमेश्वर ब्राह्मण का पुत्र ज्ञानेश्वर जब तक सुशिक्षित नहीं किया जाएगा तब तक वह ज्ञान ग्रहण करने के योग्य नहीं होगा। और यदि उसने ज्ञान ही ग्रहण नहीं किया अथवा उसको कराया ही नहीं गया तो फिर वह ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं रह सकता।

यों तो शरीर की जो ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं उनको प्रेरित करने के लिए भी मन और बुद्धि नामक दो यन्त्र मनुष्य-शरीर में होते हैं।

इन यन्त्रों को शिक्षित करने की आवश्यकता होती है। पाँच की पाँचों ही ज्ञानेन्द्रियों का सम्बन्ध चित्त से होता है। चित्त ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान का संचय, विश्लेषण और फिर उस ज्ञान की प्रतिक्रिया का निर्णय मन और बुद्धि करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं समाज का जो ब्राह्मण वर्ण है, जिसे हमने सिर के समान बताया है, उसकी तुलना शरीर में विद्यमान चित्त के साथ की जानी चाहिए। जिस प्रकार ब्राह्मण के घर में अथवा किसी अन्य वर्ण के घर में उत्पन्न सन्तान शिक्षा और

प्रशिक्षण से ब्राह्मण वर्ण अथवा किसी अन्य भी वर्ण का कार्य करने के लिए प्रशिक्षित करने के लिए उसको तैयार करना पड़ता है।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि शरीर के किसी अंग की यदि ब्राह्मण वर्ण से तुलना करनी हो तो वह चित्त अर्थात् मन और बुद्धि से करनी चाहिए।

समाज में ब्राह्मण वर्ण का निर्माण प्रशिक्षण से ही हो सकता है। अतः हमारा यह सुनिश्चित मत है कि जिन महापुरुषों ने ब्राह्मण के घर में उत्पन्न सन्तान को ही ब्राह्मण माना उन्होंने जातीय ह्रास की नींव प्रस्थापित कर दी। वास्तव में शिक्षा और प्रशिक्षण के उपरान्त ही परीक्षा करके यह निर्धारित किया जाना चाहिए था कि अमुक व्यक्ति का पुत्र ब्राह्मण वर्ण का है अथवा कि शूद्र वर्ण का।

पहले तो ब्राह्मण को जन्मजात माना गया। उसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण माता-पिता के घर में जन्म लेना मुख्य हो गया। शिक्षा और प्रशिक्षण गौण हो गया। उसके बाद शिक्षा भी अनावश्यक अथवा न्यूनातिन्यून हो गई। न केवल इतना अपितु ब्राह्मण माता-पिता के घर में उत्पन्न अनपढ़, मूर्ख गँवार को भी ब्राह्मण मान लिया गया। उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि जन्म से ब्राह्मण मान लेने पर ज्ञान-विज्ञान का लोप होता गया। उसी समय जातीय ह्रास भी आरम्भ हो गया।

यह दुर्व्यवस्था थी मुसलमानी काल में ब्राह्मण वर्ण की। उस समय तक यह व्यवस्था पूर्णतया इस जाति में घर कर गई थी। ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न व्यक्ति सत्यनारायण की कथा को कण्ठस्थ कर जाति का नेतृत्व करने लगे। जो कोई कुछ अधिक पढ़ भी लेता था तो उनको व्यावहारिक अथवा टैक्नीकल ज्ञान न होने के कारण जातीय उन्नति में उनका स्थान उसी प्रकार हो गया जिस प्रकार मानव-शरीर में अविकसित मन और बुद्धि

निरर्थक सिद्ध होते हैं।

शरीर अर्थात् मानव-जाति के विभिन्न अंग और वर्ग अपने जीवन में शिक्षा की आवश्यकता अनुभव करते हैं। और यदि जातीय ब्राह्मण उनको वह उचित शिक्षा नहीं दे पाते तो एक लँगड़े-लूले की भांति वे दूसरों के आश्रित हो जाते हैं। उस समय यही दशा थी। लँगड़ा-लूला क्षत्रिय अथवा वैश्य किसी विजातीय के पास जाकर उससे शिक्षा ग्रहण करने पर बाध्य हो रहे थे।

यह तब से ही प्रचलित है, और हमें स्मरण है कि सन् १६०० के लगभग भी हमारे मौहल्ले के बालक मौहल्ले के पांडे के पास गणित की मौलिक शिक्षा तथा अक्षरबोध के लिए भेजे जाते थे।

इसी प्रकार हमें भी एक ब्राह्मण पण्डित के पास भेजा गया था।

हमारे एक अन्य साथी को किसी मुसलमान पांधे के पास आरम्भिक शिक्षा के लिए भेजा गया था।

छः मास तक हम अपने पण्डित के पास पढ़ने जाते रहे। उस छः मास की अवधि में उन महाशय ने हमको बारह अक्षरों वाली लुण्डी लिपि का थोड़ा ज्ञान तो करा दिया किन्तु गणित के नाम पर वह हमें एक से आरम्भ कर सौ तक की गणना भी नहीं सिखा पाया था।

छः मास बीतने पर हमारे साथी ने, जो मुसलमान मौलवी के पास पढ़ने के लिए जाता था, बताया कि वह न केवल गिनती ही सीख गया है अपितु पहाड़े भी सीखने लगा है। हमने जब अपने साथी के मुख से पहाड़े सुने तो विस्मय में हम उसका मुख देखते रह गए। तब हमारी इच्छा हुई कि हमें अपना शिक्षक बदल लेना चाहिए। हमारे साथी का शिक्षक मुसलमान था। कदाचित् उसके पुरखे किसी कारण हिन्दू से मुसलमान हो

गए होंगे। किन्तु दो-तीन पीढ़ी बीत जाने के बाद भी वह अपना पैतृक कार्य ही करते थे।

हमने जब अपने मित्र से अपनी इच्छा व्यक्त की तो वह हमें अपने उस मुसलमान शिक्षक के पास ले गया।

उस पांधा ने अपनी दक्षिणा सवा रुपया बताई। हमने बताया कि हम अपने माता-पिता की आज्ञा के बिना आए हैं अतः हमारे पास दक्षिणा देने के लिए सवा रुपया नहीं है। न जाने उसके मन में क्या आया कि उसने हमें नित्य प्रति आने के लिए कह दिया। उसका कहना था कि जब हम कुछ सीख जाएँ तो अपने पिताजी को बताकर उसकी दक्षिणा दे दूं।

इस प्रकार छः मास तक हम बिना अपने माता-पिता को बताए उस मुसलमान पांधा के पास पढ़ने के लिए जाते रहे। इस अवधि में हमने न केवल लुण्डी भाषा सीख ली, अपितु हजार तक की गिनती और पहाड़े आदि भी सब कण्ठस्थ हो गए। इसके साथ ही लिखना भी सीख लिया।

उस समय संयोगवश हमारे पुराने पण्डित जी की भेंट हमारे पिताजी से हो गई। पण्डित जी ने पिताजी से पूछ लिया कि हम उनके पास पढ़ने क्यों नहीं जाते?

पिताजी ने जब यह सुना तो उनको विस्मय हुआ। उनके ज्ञान में तो हम नित्य प्रति पाटी-दवात लेकर पढ़ने के लिए जाते रहे थे। जिस समय उनकी पण्डित से भेंट हो रही थी उस समय भी हम पढ़ने के लिए गए हुए थे, यही हमारे पिताजी के ज्ञान में था।

सायंकाल हम जब घर पहुँचे और पिताजी भी घर पर आ गए तो उन्होंने हमें अपने पास बुलाकर पूछा, "कहाँ से आए हो?"

"पढ़ने गया था।"

"किन्तु पण्डित जी तो कहते थे कि तुम उनके पास पढ़ने

जाते ही नहीं ?"

उस समय हमें स्मरण हो आया कि हमने अपने शिक्षक बदलने की बात तो अभी तक बताई ही नहीं थी। उस समय हमने उनको बताया, "मैंने पांधा बदल लिया है।"

पिताजी को यह सुनकर विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा, "कब से बदला है ?"

"बहुत दिन हो गए हैं।"

"अब किससे पढ़ते हो ?"

"टकसाल वाले पांधा से।"

"वह तो मुसलमान है ?"

"होगा, किन्तु वह पढ़ाता है। उसने मुझे बहुत कुछ सिखा दिया है।" यह कहकर मैंने उनको एक-दो पहाड़े सुना दिए।

पिताजी सुनते रहे। हमने उनको बताया, "पहला पांधा तो केवल हुक्के की नली से मारता ही रहता था, बताता कुछ भी नहीं था।"

पिताजी कुछ क्षण सोचकर कहने लगे, "इस नए पांधा ने अपनी दक्षिणा नहीं माँगी ?"

"माँगी तो थी, किन्तु मेरे पास थी नहीं।"

"क्या माँगा था ?"

"सवा रुपया।"

पिताजी को न जाने क्यों उस मुसलमान को हमारा गुरु बनाना उचित नहीं लगा। अगले दिन वे हमारे साथ उस पांधा के पास गए। उन्होंने उसकी दक्षिणा का सवा रुपया दे दिया। किन्तु उसी समय वहाँ से हमारी छुट्टी भी करा लाए। उन्होंने उसको कह दिया कि अब हमको किसी अंग्रेजी स्कूल में प्रविष्ट कराया जाएगा।

इतना ही नहीं, पिताजी ने पांधा से सच ही कहा था। वे हमें लेकर एक आर्य समाज के स्कूल में गए और हमें वहां

प्रविष्ट करा दिया।

सन् १९०० तक हिन्दू पांग्रामों की यही दशा और अवस्था थी। यह अंग्रेजों का शासनकाल था। मुसलमानों के शासन में, जबकि चारों ओर भय और आतंक की तलवार लटक रही थी, यह दशा और भी खराब रही होगी।

हकीकतराय के जीवनकाल में पंजाब-भर का समस्त वैश्य समाज अपना काम-काज बारह अक्षरी लण्डी लिपि से चलाया करता था। उस लिपि के माध्यम से किसी प्रकार की उच्च शिक्षा अथवा ज्ञान-विज्ञान का पठन-पाठन तो हो ही नहीं सकता था।

हकीकतराय के पिता के सम्मुख भी यही विवशता होगी, जिसके कारण उनको अपने बुद्धिशील पुत्र को किसी मुल्ला के पास अध्ययन के लिए भेजना पड़ा होगा। क्योंकि ब्राह्मण वर्ग तो उस समय मात्र कथावाचक ही रह गया था। उसकी विद्वत्ता लुप्त हो गई थी।

हमारे पिताजी स्वयं थोड़ी-बहुत उर्दू, फारसी का ही ज्ञान रखते थे। वे अधिक पढ़-लिख नहीं सकते थे। उनको मात्र काम-काजी ज्ञान था। इससे यह सिद्ध होता है कि पंजाब में हिन्दू समाज की व्यावहारिक शिक्षा की स्थिति बड़ी विकृत और दयनीय थी।

सिखों के गुरु अर्जुनदेव को जब यह अनुभव होने लगा कि गुरु ग्रन्थ साहब का व्यापक प्रचार-प्रसार होना चाहिए तो उनको लगा कि लण्डी लिपि की अपेक्षा गुरुमुखी लिपि श्रेष्ठ है।

किन्तु यह बात हकीकतराय के बाद के काल की है और उस समय भी गुरुमुखी का इतना प्रसार नहीं था। यही कारण है कि हकीकतराय के पिता लाला भागमल को अपने सुयोग्य पुत्र को शिक्षा ग्रहण कराने मुसलमान मुल्ला के मकतब में भेजना पड़ा था।

यह तथ्य सर्वविख्यात है कि इस्लाम की शिक्षा देनेवाले उस मकतब का अध्यक्ष जो मुल्ला था वह हकीकतराय जैसे बुद्धिमान बालक को अपने मकतब में प्रविष्ट करा कर बहुत प्रसन्न हुआ था। एक तो इस कारण भी कि मुल्ला साहब को मिठाई देकर प्रसन्न किया गया था और इसके साथ ही कुछ मासिक दान-दक्षिणा देने का भी आश्वासन दिया गया था।

जिस समय हकीकतराय को मकतब में प्रविष्ट कराया था उस समय उसकी आयु ग्यारह वर्ष की थी। उसने दो वर्ष तक वहाँ अध्ययन किया था। जब बालक हकीकत तेरह वर्ष का हुआ तो उसके माता-पिता ने लक्ष्मी नाम की एक नौ वर्ष की कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया था।

लक्ष्मी के माता-पिता अमृतसर के समीप बटाला नगर के निवासी थे। उस समय हिन्दुओं में दूर-दूर सम्बन्ध की प्रथा प्रचलित थी। इसी कारण यह सम्बन्ध भी सम्भव हुआ।

विवाहोपरान्त हकीकतराय की पत्नी लक्ष्मी को सियालकोट ले आया गया। लक्ष्मी अल्पायु थी अतः उस समय उसको अपने पति के साथ नहीं रखा जाता था। तदपि संस्कारों के वशीभूत पति-पत्नी दोनों ही यह भली-भांति जानते थे कि वे पति-पत्नी हैं और उनका यह सम्बन्ध जीवन-भर के लिए है। उस युग में पति-पत्नी के सम्बन्ध को धर्म का सम्बन्ध माना जाता था और यह अटूट समझा जाता था। यही भावना हकीकतराय और उसकी पत्नी लक्ष्मी के मन में भी थी। लक्ष्मी के कालान्तर के जीवन से इस विषय में और अधिक स्पष्ट भास होता है।

हकीकतराय के विवाह के कुछ समय बाद मुल्ला के मकतब

में झगड़ा हो गया। इस झगड़े का मुख्य कारण हकीकतराय ही था। उसका कारण यह था कि वह बहुत ही तीव्र बुद्धि का किशोर था। जो बात अन्य विद्यार्थी एक सप्ताह में स्मरण और कण्ठस्थ आदि करते थे उसे हकीकतराय एक ही दिन में समझ और स्मरण कर लेता था।

आज भी यदि इन दोनों समाजों के व्यक्तियों में देखा जाए तो लगभग वैसी ही स्थिति पाई जाती है। एक सामान्य हिन्दू एक सामान्य मुसलमान से बुद्धि और मन से श्रेष्ठ होता है। मन का कार्य है अनुभवों को स्मरण रखना। इसी प्रकार बुद्धि का कार्य है स्मरण किए पर विचार करके उसके परिणाम का अनुमान लगाना।

परन्तु ऐसा क्यों है? इस सम्बन्ध में हमारा सुविचारित मत तो यही है कि पूर्वजन्म के कर्मफल से भी मन और बुद्धि मिलती है और श्रेष्ठ मन और बुद्धि प्राप्त करने वालों को हिन्दू समाज में जन्म मिलता है। किन्तु विजातीयों को यह सब समझ पाना बहुत कठिन है। यह भी उनकी अनभिज्ञता के कारण ही समझना चाहिए। गाय का दूध और उसके घी का प्रयोग भी एक मुख्य कारण रहा है। यही कारण है कि हिन्दू गाय को पूज्य मानते हैं और मुसलमान तथा अन्य विजातीय उसको वध्य मानते हैं।

मुसलमान और ईसाई यह भी स्वीकार नहीं करते कि जीवात्मा का पुनर्जन्म भी होता है। इन दोनों के मतों में तथा अन्यान्य 'सेमेटिक' मतों की यह मान्यता है कि जब मनुष्य मर जाता है तो उसका आत्मा भी उसके शरीर के साथ ही कब्र में दबा पड़ा रहता है। इसके अतिरिक्त उनकी यह भी मान्यता है कि जब प्रलय (कयामत) आएगी तो उस समय कब्रों से सभी आत्माएँ उठेंगी और परमात्मा उनके आचरणों तथा कार्यों का निरीक्षण कर उनको स्वर्ग अथवा नरक में भेजेगा।

उनकी मान्यता है कि प्रत्येक जन्म लेने वाले प्राणी को नया आत्मा प्राप्त होता है। यही कारण है कि इस प्रकार के मत-मतान्तर वाले हिन्दू-जीवन-मीमांसा को न समझते हुए यह नहीं मानते कि इस जन्म से पहले भी उनका आत्मा किसी प्रकार के जीवन में रहा है और उस जीवन में वह अच्छे अथवा बुरे कर्म करता रहा है। इस जन्म में वह शरीर, इन्द्रियाँ तथा मन और बुद्धि अपने पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार अच्छे-बुरे फल पाता है।

मुसलमान तथा ईसाइयों की मान्यता कुछ भी क्यों न हो किन्तु यह तो वस्तुस्थिति है। हम आत्मतत्व को ईक्षण करने वाला मानते हैं। ईक्षण करने का अभिप्राय होता है, अपने व्यवहार पर नियन्त्रण रखने वाला। प्रत्येक व्यवहार में मनुष्य का जीवात्मा उसके फलाफल को देख और समझ सकता है। वह अपने कर्मों के फल का भोगने वाला होता है।

यही जीवन-मीमांसा है कि जिसके कारण मनुष्य जन्म लेते ही अच्छे-बुरे शरीर, मन और बुद्धि को प्राप्त करते हैं।

परन्तु यह जीवन-मीमांसा संसार में वस्तुस्थिति के अनुसार भी है। एक ही माता-पिता के घर में भिन्न-भिन्न स्वभाव और सामर्थ्य वाले बच्चे उत्पन्न होते हैं।

हमें स्वयं अपने पिता के परिवार के विषय में ज्ञात है। हमारे पिताजी की सात सन्ततियाँ थीं। उनमें तीन पुत्र थे और चार पुत्रियाँ। सातों के जीवन की उपलब्धियाँ भिन्न-भिन्न और असमान हुई हैं। हमारे जो सबसे बड़े भाई थे, वे आठवीं कक्षा से अधिक शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके थे। जब वे सातवीं श्रेणी में उत्तीर्ण हुए तो उनको लाहौर नगरपालिका में सात रुपया मासिक की नौकरी प्राप्त हो गई थी। वृद्धावस्था में जब वे सेवामुक्त हुए थे तो उस समय तक उनका वेतन केवल ७० रु० मासिक हो पाया था।

एक अन्य भाई जो थे, उनकी आँखें बाल्यावस्था में ही

खराब हो गई थीं, इस कारण उनको तनिक भी शिक्षा नहीं मिल पाई थी। वे कुछ लिख-पढ़ नहीं सके।

तीसरा लड़का लेखक स्वयं अनेक पारिवारिक बाधा-विघ्नों के होते हुए भी उस समय की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा, रसायन-शास्त्र में एम० एस-सी० उत्तीर्ण करने के उपरान्त उस समय के पंजाब प्रान्त के सर्वश्रेष्ठ महाविद्यालय में प्राध्यापक-पद पर नियुक्त हो गया था।

इसी प्रकार बहनों के विषय में भी हुआ। चारों बहनों की स्थिति भिन्न-भिन्न ही रही। सबसे बड़ी बहन निस्सन्तान ही रही। दूसरी बहन बाल्यावस्था में विधवा हो गई थी। इस प्रकार उसने वैधव्य जीवन व्यतीत करते हुए ६० वर्ष की आयु प्राप्त की। तीसरी बहन का निर्धन माता-पिता की सन्तान होने पर भी नगर के धनी परिवार में विवाह हो गया था। किन्तु मरते समय जबकि उसकी आयु पचपन वर्ष की ही थी कि उस समय तक उसकी आर्थिक दशा सर्वसामान्य हो गई थी।

इस प्रकार एक ही माता-पिता के घर में जन्म लेने पर भी भिन्न-भिन्न स्थितियों, सुविधाओं और कर्मफलों को भोगने वाले बच्चे देखे जाते हैं। हिन्दू लोग इस जीवन-मीमांसा को अकारण नहीं मानते। पूर्वजन्म के कर्म-फलों के फलस्वरूप ही इसे माना जाता है।

क्योंकि हिन्दू समाज अध्यात्म के विचार से मुसलमानों से श्रेष्ठ समाज है, इस कारण हिन्दू लोग यह मानते हैं कि पुण्य-आत्माएँ ही इसमें जन्म लेती हैं। कम-से-कम इतना तो मानना पड़ेगा कि अध्यात्मज्ञान में उन्नत परिवारों में पूर्वजन्म का पुण्यकर्मों वाला आत्मा ही जन्म लेता है।

अध्यात्मज्ञान में दो व्यवहार विशेष हैं जिनसे हिन्दू-मान्यताएँ श्रेष्ठ कही जा सकती हैं। उनका एक सिद्धान्त है—आत्मवत् सर्वभूतेषु। अर्थात् सब प्राणियों को अपने समान

समझना।

इसके अतिरिक्त अन्य बात है जो हिन्दुओं में बहुत ही उत्तम है। वह है—आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। अर्थात् जो व्यवहार स्वयं अपने लिए अनुकूल न हो, उसका प्रयोग दूसरों के साथ कदापि न करो।

इसके अतिरिक्त हिन्दू समाज में एक अन्य मान्यता भी प्रचलित है, जिसके सम्मुख समस्त हिन्दू समाज नतमस्तक होता है। वह है—

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धि योगात् धनंजय।

अर्थ : बुद्धि से विचारित कर्म के अतिरिक्त कर्म निकृष्ट होता है।

इस प्रकार की श्रेष्ठ आत्माओं वाले समाज में पुण्यात्मा ही जन्म ग्रहण कर सकते हैं।

यह हिन्दू समाज की सामान्य स्थिति का वर्णन है। वैसे ऊँच-नीच सब समाजों में पाई जाती है। इस पर भी कर्म के विषय में इस प्रकार के श्रेष्ठ सिद्धान्तों को मानने वालों के घर में श्रेष्ठ आत्मा नहीं आएगा तो फिर कहां आएगा?

यह हमारी सुनिश्चित धारणा है कि हकीकतराय का आत्मा पूर्वजन्म में अवश्य ही अतिश्रेष्ठ कर्म का कर्ता रहा होगा। यही कारण है कि वह उस मकतब में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थियों से प्रखर बुद्धि वाला था।

उस मकतब में मुसलमान विद्यार्थी ही थे। वे सभी उससे ईर्ष्या रखते थे। उनका यत्न यही होता था कि वे अपने मुल्ला के सम्मुख हकीकत को किसी-न-किसी प्रकार हीन सिद्ध करें।

जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं कि जब हकीकतराय का विवाह हुआ ही था और वह विवाह के उपरान्त अपनी पाठशाला में गया तो एक दिन उसका अपनी कक्षा के विद्यार्थियों से झगड़ा हो गया।

झगड़ा किसी विशेष बात के कारण उत्पन्न नहीं हुआ था। साधारण-सी बात थी। उस समय मुल्ला जी कक्षा में नहीं थे। सम्भवतया वे पाठशाला से भी बाहर चले गए थे। इसे अवसर जानकर विद्यार्थी पढ़ना छोड़कर खेल-कूद में लग गए।

हकीकतराय पढ़ने के समय को खेल-कूद में व्यय करना नहीं चाहता था। उसके इस कृत्य पर अन्य लड़के उसकी हँसी उड़ाया करते थे। उसको 'पढ़ाई का कीड़ा' कहा करते थे और उसकी खिल्ली उड़ाई जाती थी। उस दिन भी यही हुआ। किन्तु हकीकत अपने स्थान पर बैठा हुआ अपना पाठ याद करता रहा।

अन्य लड़कों ने यही समझा कि हकीकत हर समय पढ़ता ही रहता है इसी कारण यह कक्षा में प्रथम रहता है अथवा तीव्र बुद्धि वाला माना जाता है। उसको पढ़ते देखकर वे उसको उठाकर बाहर मैदान में ले जाना चाहते थे। उन्होंने जब उसको बलपूर्वक उठाना चाहा तो हकीकतराय के मुख से उस समय निकल गया 'कसम दुर्गा भवानी की, मुल्ला जी के आने पर मैं तुम सबकी शिकायत कर दूंगा।'

मुसलमान लड़कों ने हिन्दू देवी की शपथ लेते सुन हकीकत को नहीं अपितु उसकी आराध्या भवानी को ही गाली देनी आरम्भ कर दी। यहाँ तक कि किसी लड़के ने यह भी कह दिया 'उस हरामजादी को लाओ तो सही, वह है कहाँ ?'

दुर्गा भवानी हकीकतराय के परिवार की पूज्य देवी थी। जब मुसलमान विद्यार्थियों ने उसको इस प्रकार गालियाँ देनी आरम्भ कीं तो हकीकतराय को उन पर क्रोध आ गया। उसने भी उसी प्रकार की गाली 'फ़ातिमा' को दे डाली।

बस यही उस घटना का मूल कारण बन गया जिसने बलिदान के इतिहास में हकीकतराय का नाम उज्ज्वल कर दिया।

४

फातिमा दुर्गा की भांति कोई ऐसी देवी नहीं थी जो कि किसी भी प्रकार से आराध्या हो। मोहम्मद साहब की पहली पत्नी के पहले पति से उत्पन्न कन्या का नाम फातिमा था।

अपने यौवनकाल में मोहम्मद मक्का के किसी सौदागर की सेवा में नियुक्त हो गया था। वह सौदागर प्रौढ़ावस्था का व्यक्ति था। अपना माल वह दूर-दूर के देशों में ले जाकर बेचा करता था, इस प्रकार वह बहुत धनवान हो गया था। उसका माल ऊँटों पर लदकर आया करता था। इस व्यापार में मोहम्मद उसके साथ जाया करता था।

उस समय मोहम्मद की आयु बीस वर्ष की थी। एक बार वह अपने स्वामी के साथ ऊँटों पर माल लादकर दमिश्क नगर की ओर गया हुआ था। उनके साथ बीस-पचीस ऊँटों का माल था। सारा माल दमिश्क में बिक जाने पर दोनों खाली ऊँट ले कर वापस लौट रहे थे कि तभी मोहम्मद का मालिक रुग्ण हो गया। उस रोग ने उसके प्राण हर लिये।

उस व्यापार में मोहम्मद के मालिक को लाखों रुपया मिला था। वह सब धन उस समय मोहम्मद के पास ही था।

ऐसा भी सुनने में आता है कि एक बार तो उस धन को देखकर मोहम्मद का मन विचलित हो गया। उसका विचार हुआ कि वह उस धन को लेकर वहीं रह जाए अथवा किसी अन्य नगर में जाकर बस जाए। मक्का वापस न जाया जाए।

इसके विपरीत कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि दमिश्क में किसी यहूदी मन्दिर में प्रेरणात्मक धर्मोपदेश सुनने से उसको कुछ इस प्रकार की अन्तर्प्रेरणा हुई कि वह उस धन को लेकर वापस मक्का जाएगा। तदनुसार उसने निश्चय किया कि मक्का

जाकर वह पाई-पाई का हिसाब अपने मृत मालिक की पत्नी को दे दे। और मोहम्मद ने वैसा ही किया।

मोहम्मद की ईमानदारी देखकर मालिक की पत्नी के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा। यद्यपि उसका पति प्रौढ़ावस्था का था किन्तु वह स्वयं तो युवा थी। अतः उसने मोहम्मद से विवाह करने का हठ किया।

मोहम्मद और उसके मालिक की पत्नी की आयु में उसी प्रकार का अन्तर था जिस प्रकार उसके मालिक और उसकी पत्नी में अन्तर था। अतः मोहम्मद को यह विवाह स्वीकार नहीं था।

मोहम्मद अपने मालिक के व्यापार से भली-भांति परिचित हो गया था और उसकी ईमानदारी पर खदीजा बीबी अर्थात् उसके मालिक की पत्नी और उसके नाते-रिश्तेदार प्रसन्न थे। इस कारण उन लोगों ने जब मोहम्मद पर खदीजा बीबी से विवाह करने के लिए जोर डाला तो विवश उसने इसे स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार मोहम्मद एक रात में ही लखपति बन गया।

मोहम्मद से विवाह के समय खदीजा बीबी की तीन सन्तान थीं: दो लड़के और एक लड़की। इस लड़की का नाम ही फातिमा था।

मोहम्मद को जब अनायास धन मिल गया तो उसने फिर वही व्यापार करना पसन्द नहीं किया और वह अपनी पत्नी की सम्पत्ति के आश्रय आराम का जीवन व्यतीत करने लगा। उसका परिणाम यह हुआ कि मोहम्मद के निष्क्रिय मस्तिष्क में भांति-भांति के विचार उत्पन्न होने लगे। उन्हीं विचारों में जो प्रमुख था, वह यह कि मोहम्मद स्वयं को परमात्मा का दूत समझने लगा था।

मक्का नगर के समीप वन में एक गुफा थी। मोहम्मद उस

गुफा में जाकर बैठता और वहाँ चिन्तन करता रहता था। इस प्रकार वह दिन भर उसी गुफा में रहता। दिन-पर-दिन बीतते गए। इस प्रकार उसका विश्वास भी बढ़ता गया कि वह परमात्मा का भेजा हुआ दूत है। ऐसा भास होते ही उसने अपने विचारों को अपने समवयस्कों में प्रचारित करना आरम्भ कर दिया। इसके साथ ही वह यह भी कहने लगा कि वह "खुदा का भेजा हुआ पैगम्बर है।"

मोहम्मद की अपनी कोई सन्तान नहीं थी। किन्तु उसके मालिक के पुत्र हसन और इमाम तथा पुत्री फातिमा उसके संरक्षण में पल रहे थे। इस प्रकार फातिमा मोहम्मद की सन्तान न होते हुए भी उसके द्वारा पालित थी।

हकीकतराय के साथियों ने जब बार-बार दुर्गा भवानी के प्रति अपशब्दों का प्रयोग किया तो उसको भी क्रोध आ गया और उसी प्रकार उसने भी फातिमा के प्रति अपशब्दों का प्रयोग कर दिया।

इससे तो मुसलमान लड़कों को मौका मिल गया कि वे हकीकतराय की शिकायत मुल्ला से करें। वे इसी प्रकार के अवसरों की तलाश में रहते थे। मुल्ला के आने से पहले उन सबने मिलकर हकीकत की खूब पिटाई की और फिर मुल्ला के आने पर उससे इसकी शिकायत भी की।

मुल्ला ने जब सुना तो उसने इसको लड़कों का परस्पर का झगड़ा समझकर उनको शान्त करने का यत्न किया। किन्तु लड़के इतने से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने मुल्ला से कहा कि काफिर हकीकतराय ने हजरत पैगम्बर साहब की लड़की को गाली दी है, यदि उन्होंने उसको दण्ड न दिया तो वे इसकी शिकायत नगर के काजी के पास जाकर करेंगे। यह सुनकर मुल्ला डर गया।

मुल्ला यह भली-भांति जानता था कि काजी के पास यदि

यह शिकायत गई तो वह इसको बहुत बड़ा अपराध मानेगा। और यह भी कि यदि काज़ी के पास इस प्रकार की शिकायत न गई और किसी प्रकार उसको पता चल गया तो काज़ी स्वयं उसको भी अपराधी घोषित कर देगा।

भारत में मुस्लिम सुलतानों का शासन स्थापित होने पर राज्य में दोहरी शासन प्रणाली प्रचलित हो गई थी। विशेषतया मुगलों के राज्य में यह बहुत ही प्रभावी थी। एक तो साम्प्रदायिक विषयों में मुस्लिम विधि-विधान के अनुसार अभियोगों की सुनवाई करने वाले और दूसरे अन्य सांसारिक विवादों पर अपना निर्णय देने वाले होते थे।

साम्प्रदायिक अथवा मजहबी विवादों पर दिया जाने वाला निर्णय 'फतवा' कहा जाता था और सांसारिक विवादों में दिया जाने वाला निर्णय 'फैसला' कहा जाता था। फातिमा बीबी को दी गई गाली मजहबी विवाद माना गया। मकतब का मुल्ला लड़कों का शोर सुनकर डर गया था और वह स्वयं ही इस विवाद को लेकर काज़ी के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसके साथ उसके मकतब के वे सभी विद्यार्थी थे जिन्होंने दुर्गा भवानी को गाली दी थी और हकीकतराय को पीटा भी था।

इस प्रकार जब यह समूह काज़ी की ओर चला तो इसकी सूचना हकीकतराय के माता-पिता तथा नगर के अन्य हिन्दुओं को भी मिली। उसका परिणाम यह हुआ कि नगर के काज़ी के न्यायालय में बहुत बड़ी भीड़ एकत्रित हो गई। मकतब का मुल्ला तथा उसके सभी विद्यार्थी वहाँ उपस्थित थे। हकीकतराय के माता, पिता, सम्बन्धी भी उपस्थित हो गए थे। इसके अतिरिक्त नगर के अन्य धर्म-प्रेमी लोग वहाँ एकत्रित हो गए।

काज़ी ने सबसे पहले मकतब के लड़कों से पूछा। उन्होंने हकीकतराय पर दोषारोपण किया कि उसने हज़रत मोहम्मद साहब की पुत्री के प्रति अपशब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने

सारी बात बढ़ा-चढ़ा कर की और कह दिया कि उसने धार्मिक अपराध किया है अतः उसको कठोर-से-कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए।

काज़ी ने लड़कों की बात सुनी। उसके बाद उसने अपनी 'शरा' की पुस्तक निकाली। उसमें गाली के अपराध में दिए जाने वाले दण्ड का कहीं विधान किया ही नहीं गया था। उसमें तो केवल यही लिखा था कि यदि कोई गैर-मुसलमान इस्लाम का अपमान करता है तो उसको दोजख की आग में जलना पड़ता है।

काज़ी को स्रोत मिल गया। उसने हज़रत मोहम्मद के किसी रिश्तेदार को गाली देना इस्लाम की तौहीन मान लिया। उसने तुरन्त उसका दण्ड भी 'शरा' में से पढ़कर सुना दिया।

इस अवसर पर हकीकतराय ने कहा कि उसने तो तब यह गाली दी थी जबकि उसके साथियों ने उसके अपने इष्टदेव को बहुत सारी गालियाँ दे डाली थीं। किन्तु काज़ी ने इसको कोई ऐसा कारण नहीं माना कि जिसके कारण इस्लाम का अपमान किया जाय।

हिन्दू समाज ने तो इसको न्याययुक्त कभी माना ही नहीं, वर्तमान कानून में भी चाहे वह किसी भी देश का क्यों न हो, शायद मुस्लिम देशों के कानून को छोड़कर, कहीं भी काज़ी के इस निर्णय को न्याययुक्त नहीं समझा जाता।

इस प्रसंग में कालान्तर की पंजाब की एक घटना का स्मरण हो आता है। १९२२ में कांग्रेस के एक मुसलमान नेता सेफुद्दीन किचलू ने हिन्दुओं के देवी-देवताओं की खिल्ली उड़ाई थी। उसने रावलपिण्डी की एक सार्वजनिक सभा में कहा था, "हिन्दुओं को अब अपने काले-कलूटे देवताओं को छोड़कर अक्ल की बात करनी चाहिए।" इस कथन की हिन्दू-क्षेत्रों में बहुत चर्चा हुई, विशेषतया पंजाब में।

उसकी प्रतिक्रियास्वरूप आर्यसमाज के एक नेता ने एक पुस्तिका प्रकाशित कराई जिसमें यह उल्लेख किया गया कि हिन्दुओं के राम-कृष्ण रंग के सांवले अवश्य थे किन्तु वे चरित्र के बड़े उज्ज्वल थे। इसके विपरीत हज़रत मोहम्मद तो चरित्र के भी बहुत ही हीन थे। उस पुस्तिका में मोहम्मद के जीवन की कुछ निजी घटनाओं का भी उल्लेख किया गया था। उस पुस्तिका का नाम था 'रंगीला रसूल'। यह प्रकाशित कर दी गई।

मुसलमानों का रक्त खौल उठा। उन्होंने इसे इस्लाम का अपमान समझा और इसके लिए लेखक और प्रकाशक पर इस्लाम के अपमान का अभियोग दायर कर दिया। यह अभियोग नीचे के न्यायालयों से होता हुआ उच्च न्यायालय तक गया। वहां न्यायाधीश ने प्रकाशक को दोषमुक्त घोषित कर दिया। न्यायाधीश का कहना था कि जो कुछ हज़रत मोहम्मद के विषय में 'रंगीला रसूल' में लिखा गया है वह सब हज़रत साहब की जीवनी में और हदीसों में लिखा हुआ पाया जाता है और वे सब प्रकाशित हैं और बाजार में बिकती हैं। इस कारण इस पुस्तिका के प्रकाशक ने कोई नई बात नहीं लिखी है।

पुस्तिका पर किसी लेखक का नाम नहीं था। इस कारण अभियोग केवल प्रकाशक पर ही चल रहा था।

न्यायालय ने तो प्रकाशक को दोषमुक्त कर दिया किन्तु मुसलमानों ने उस प्रकाशक को क्षमा नहीं किया। एक दिन अवसर पाकर एक मतान्ध मुसलमान ने छुरा मार, उसकी हत्या कर दी।

हकीकतराय का अभियोग भी लगभग 'रंगीला रसूल' जैसा अभियोग ही था। किन्तु शासकों में अन्तर था। सन् १६२२ में भारत में अंग्रेजों का शासन था और हकीकतराय के समय सियालकोट में इस्लामी राज्य था। इस समय मुसलमानों की

'शरा' का ही प्रचलन था। बस यही इसमें अन्तर था अन्यथा ये दोनों घटनाएँ समान ही थीं।

सन् १६२२ में सेफुद्दीन किचलू पढ़ा-लिखा और प्रतिष्ठित मुसलमान माना जाता था। इसके विपरीत हकीकतराय एक प्रौढ़ावस्था के हिन्दू व्यापारी का पुत्र था और सियालकोट में झगड़ने वाले एक मुल्ला के मकतब में अल्पायु का विद्यार्थी था।

एक अन्य अन्तर यह भी था कि हकीकतराय पर इस्लामी शरा के आधार पर विवाद का विचार किया गया था और 'रंगीला रसूल' के प्रकाशक पर तत्कालीन अंग्रेजी कानून के अनुसार अभियोग चलाया गया था और उसके आधार पर ही निर्णय किया गया था। बस यही इन घटनाओं में अन्तर था।

अभिप्राय यह कि दोनों में जो अन्तर था वह यह कि राज्य भिन्न-भिन्न थे। कानून भी भिन्न थे। इस कारण दोनों के निर्णय भी भिन्न ही थे।

इस्लाम की शरा को मुख्य रूप दिया गया था दूसरे खलीफा द्वारा। पहले खलीफा तो हज़रत वली उल इस्लाम के देहान्त के उपरान्त केवल चार वर्ष तक ही जीवित रह पाए थे। किन्तु दूसरे खलीफा हज़रत उमर सुदीर्घ काल तक अपने पद पर प्रतिष्ठित रहे। उन्होंने अपने काल में इस्लामी राज्य में वृद्धि भी की थी।

हज़रत उमर ही वह खलीफा थे जिन्होंने शरा की बहुत-सी बातों का संग्रह कर उसको कानून का रूप दिया था।

फाउद विश्वविद्यालय, मिस्र के मुसलमान इतिहासज्ञ प्रोफेसर इनान ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

In short, tolerance was a firmly established principle of Muslim policy, dating from the time of the Prophet himself; it was afterwards pushed to limits which may have exceeded the imagi-

nation of the Prophet and his first successors.

(*Decisive Moments in the History of Islam* ; M.A. Enan, p. 16)

इसका अर्थ है—संक्षेप में, हज़रत पैगम्बर के समय से ही सहनशीलता मुस्लिम नीति का एक स्थिर सिद्धान्त था। पैगम्बर और उनके प्रथम उत्तराधिकारी के उपरान्त यह नीति धकेल-कर उन सीमाओं को पार कर गई थी।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि दूसरे ख़लीफा उमर इब्न अल खिताब के काल में सहनशीलता को समाप्त कर दिया गया था। उस काल से नीति में परिवर्तन हो गया था, जो कुछ इस प्रकार की हो गई थी—

Omar Ibn al-Khattab, the second caliph, was the first to formulate this policy towards the Zimmis (non Muslims) in promulgated laws and regulations, which were the source of such legislation in Muslim countries. They differed in vigour and moderation according to circumstances and may be resumed as follows : The Zimmis (non Muslims) were not allowed to build new churches or synagogues or to rebuild those already fallen ; neither to raise the cross on the churches or to expose their sacred books in the streets or public places ; or to chant their prayers in the churches situated in Muslim Quarters ; they could not light tapers and they must proceed quietly in funeral processions while passing through Muslim quarters ; they were also prohibited to try to convert a Christian ; they must comply with the rules of humility and respect due to Muslims, such as to avoid sitting before a Muslim without permission, and not to wear

Muslim clothes; they must have their special garments and colours. They were also forbidden to have Arabic names, or to inscribe Arabic letters on their seals, or to use saddles or to carry arms, or to have Muslim slaves.

(*Decisive Moments in the History of Islam*; M.A. Enan.)

अर्थात्—उमर इब्न अल खिताब, द्वितीय खलीफा, प्रथम व्यक्ति था जिसने इस्लामी राज्य की जिमियों (गैर-मुसलमानों) के विषय में राजसी नियम और उपनियम बनाए थे, जिनके आधार पर इस्लामी देशों में कानून बनाए गए थे। भिन्न-भिन्न देशों में इनमें कुछ भेद-भाव भी हुआ है। यह वहाँ की विशेष परिस्थिति के कारण था जिन्हें संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है: जिमि (गैर-मुस्लिम) नये गिरजाघर अथवा सिनागौग (मजहबी मन्दिर) नहीं बना सकते थे, न ही पुराने गिरिजाघरों की मरम्मत करा सकते थे। अपने गिरिजाघरों पर वे सलीब भी खड़ी नहीं कर सकते थे। न ही वे अपनी धर्म-पुस्तकों को सर्व-सामान्य में दिखा ही सकते थे। वे गिरिजाघरों में मोमबत्तियाँ नहीं जला सकते थे। मुस्लिम मोहल्लों में स्थित गिरिजाघरों के भीतर वे अपने धार्मिक गीत भी नहीं गा सकते थे। उनको जनाओं (मृत शवों का जुलूस) मुस्लिम मोहल्लों से ले जाते समय अपने धर्मगीत गाने की स्वीकृति नहीं थी। अपने मुसलमान बन गए सहधर्मियों को पुनः अपने धर्म में सम्मिलित करने की भी उनको स्वीकृति नहीं थी। न ही वे किसी को इस्लाम ग्रहण करते हुए रोक सकते थे। उनको मुसलमानों के सम्मुख नम्रता और छोटा होने का भाव अपनाना होता था। किसी मुसलमान की उपस्थिति में बिना उसकी स्वीकृति के बैठना नहीं चाहिए। अथवा मुसलमानी फैशन के कपड़े नहीं पहनने होते थे। उन्हें विशेष प्रकार के और रंग के वस्त्र पहनने चाहिए। वे

अरबी भाषा में अपने नाम नहीं रख सकते थे। न ही अपनी मोहरों पर अरबी अक्षरों का प्रयोग कर सकते थे। उनको अपने घोड़ों पर बिना काठी के ही सवारी करनी होती थी। वे किसी प्रकार का शस्त्र अपने पास नहीं रख सकते थे। वे किसी मुसलमान को गुलाम के रूप में अपने पास नहीं रख सकते थे।

यह थी वह शरा जिसे द्वितीय खलीफा हज़रत उमर ने तैयार किया था।

ये तथा इसी प्रकार के अन्य कानून हदीसों पर आधारित होते थे। हदीस का अर्थ होता है हज़रत पैगम्बर साहब के फरमान, जो वह समय-समय पर अपने जीवनकाल में देते रहे थे और जो इन द्वितीय खलीफा ने अपने काल में हज़रत पैगम्बर साहब के सम्पर्क में आए लोगों से पूछ-पूछकर संकलित किए थे।

इनान साहब की यह सम्मति प्रतीत होती है कि इन हदीसों में बहुत-सी किंवदन्तियाँ सत्य नहीं थीं। उनका विचार था कि द्वितीय खलीफा द्वारा प्रचलित किए गए बहुत-से शरा के नियम हज़रत पैगम्बर साहब के काल में प्रयुक्त नहीं होते थे।

इस सबके प्रकाश में यह भी कहा जा सकता है कि हकीकतराय के विरुद्ध जो मुल्ला और सर्वसाधारण मुसलमान उस समय कर रहे थे वह हज़रत साहब के जीवनकाल में प्रचलित नहीं भी हो सकता।

कुछ भी होता रहा हो, किन्तु जब मकतब के मुसलमान तुलवा अर्थात् छात्रों ने काज़ी के पास मुल्ला की शिकायत करने की धमकी दी तो वह डर गया था। यही कारण था कि उसको स्वयं हकीकतराय को लेकर नगर के काज़ी के पास शिकायत करने के लिए जाना पड़ा था।

ऐसा माना जाता है कि हज़रत के मरने के दो सौ वर्ष उपरान्त तक इस प्रकार हज़रत के कथनों का संग्रह होता रहा है।

यह कहा जाता है कि इस प्रकार संकलित किए गए इस प्रकार के वाक्यों की संख्या छः लाख से भी अधिक हो गई थी। तब उलेमाओं की एक समिति का गठन किया गया। उस समिति ने सत्य और झूठ को अलग-अलग करने का यत्न किया। इस छटनी के बाद हज़रत के कथनों की संख्या छः लाख से घटकर साठ हज़ार रह गई। इसको ही हदीस कहा गया है। हदीस का अर्थ होता है : सुने हुए कथन।

इस्लाम में इसी को शरा कहा गया है। इसमें कितना सत्य है और कितना पैगम्बर ने कहा होगा, यह निश्चय से कह पाना सम्भव नहीं है।

डॉक्टर अब्दुल हमीद सिद्दीक़ी ने 'साहि मुस्लिम' नाम से एक पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है। इसमें ७,१९० हदीस हैं। अर्थात् हज़रत के ७,१९० वाक्यों का संकलन है। अनुवादक नें इनके नीचे अपनी टिप्पणियाँ भी दी हैं जिनकी संख्या ३७८१ है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि उस काल में कोई इससे बड़ी पुस्तक 'साहि मुस्लिम' नाम से रही होगी। साहि का अर्थ है साक्षी। अर्थात् ये कथन किसी ने सुनकर लिखे हैं।

काज़ियों ने जब अपनी शरा की किताब में देखा कि बुतपरस्तों के किसी देवता का मुसलमानों द्वारा अपमान किए जाने की बात का कहीं उल्लेख नहीं है तो उन्होंने इसको किसी प्रकार का अपराध माना ही नहीं। किन्तु इसके विपरीत उनको शरा में यह उल्लेख मिल गया कि यदि कोई गैर-मुसलमान इस प्रकार का अपमान करे तो वह दण्डनीय अपराध है।

डॉक्टर सिद्दीक़ी द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'साहि मुस्लिम' की एक साहि इस प्रकार है—

ऐसा माना जाता है कि हज़रत के मरने के दो सौ वर्ष उपरान्त तक इस प्रकार हज़रत के कथनों का संग्रह होता रहा है।

यह कहा जाता है कि इस प्रकार संकलित किए गए इस प्रकार के वाक्यों की संख्या छः लाख से भी अधिक हो गई थी। तब उलेमाओं की एक समिति का गठन किया गया। उस समिति ने सत्य और झूठ को अलग-अलग करने का यत्न किया। इस छटनी के बाद हज़रत के कथनों की संख्या छः लाख से घटकर साठ हजार रह गई। इसको ही हदीस कहा गया है। हदीस का अर्थ होता है : सुने हुए कथन।

इस्लाम में इसी को शरा कहा गया है। इसमें कितना सत्य है और कितना पैगम्बर ने कहा होगा, यह निश्चय से कह पाना सम्भव नहीं है।

डॉक्टर अब्दुल हमीद सिद्दीक़ी ने 'साहि मुस्लिम' नाम से एक पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है। इसमें ७,१६० हदीस हैं। अर्थात् हज़रत के ७,१६० वाक्यों का संकलन है। अनुवादक नें इनके नीचे अपनी टिप्पणियाँ भी दी हैं जिनकी संख्या ३७८१ है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि उस काल में कोई इससे बड़ी पुस्तक 'साहि मुस्लिम' नाम से रही होगी। साहि का अर्थ है साक्षी। अर्थात् ये कथन किसी ने सुनकर लिखे हैं।

काज़ियों ने जब अपनी शरा की किताब में देखा कि बुतपरस्तों के किसी देवता का मुसलमानों द्वारा अपमान किए जाने की बात का कहीं उल्लेख नहीं है तो उन्होंने इसको किसी प्रकार का अपराध माना ही नहीं। किन्तु इसके विपरीत उनको शरा में यह उल्लेख मिल गया कि यदि कोई गैर-मुसलमान इस प्रकार का अपमान करे तो वह दण्डनीय अपराध है।

डॉक्टर सिद्दीक़ी द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'साहि मुस्लिम' की एक साहि इस प्रकार है—

"Abusing a Muslim is an outrage and fight-ing against him is unbelief" (साहि १२२)

(Quoted from—*Understanding Islam through Hadis* : Ram Swarup)

एक और साहि है—

He who amongst the community of Jews and Christians hears about me, but does not affirm his belief in that with which I have been sent and dies in this state of disbelief, he shall be but one of the denizens of Hell-Fire (284). The Jews and Christians will suffer in hell not only for their own unbelief in Muhammad, they will also act as proxies for any Muslims who happen to be sent there. "There would come people amongst the Muslim on the Day of Resurrection with as heavy sins as a mountain, and Allah would forgive them and he would place in their stead the Jews and the Christians" Mumammad tells us. (6668)[1]

इन साहियों का अर्थ है—

किसी मुसलमान को गाली देना दुष्कृत्य है और उसके विरोध की कार्यवाही कुफ्र है।

दूसरी साहि का अर्थ है—

यहूदी अथवा ईसाई समुदाय में से जो कोई मेरी बात सुनता है, परन्तु उस पर विश्वास नहीं करता, मेरा अनुमोदन नहीं करता, वह नरक की अग्नि में जलने के लिए भेजा जाएगा। उसके लिए वह नरक की अग्नि में झुलसा जाएगा। (२८४)

यहूदी और ईसाई केवल अपने अविश्वास के लिए ही कष्ट

१. श्री रामस्वरूप द्वारा विरचित 'अंडरस्टैंडिंग इस्लाम थ्रू हदीस', पृ० ६

नहीं भोगेंगे अपितु वे कसूरवार मुसलमानों के बदले में भी दण्ड पाएँगे। (६६६८)

इस प्रकार हदीस के आधार पर विचार करने के उपरान्त हकीकतराय-विवाद में काज़ी द्वारा यह फतवा दिया गया कि दुर्गा-भवानी को गाली देना अपराध नहीं। परन्तु हज़रत पैगम्बर की लड़की को गाली देना घोर अपराध है। इसके लिए अपराधी को दोजख की आग में झुलसना होगा।

इतने से ही बात समाप्त नहीं हो गई। मुसलमानों को इससे सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने दोजख कब देखा है? हकीकत कब उस दोजख में जाएगा! तब उन सब उलेमाओं ने यह फतवा दिया कि हकीकत को तुरन्त कत्ल कर दिया जाए जिससे वह तुरन्त ही दोजख की आग में झुलसने के लिए जा सके।

यद्यपि वे यह नहीं जानते थे कि हकीकत किस प्रकार दोजख में जाएगा, तदपि उनका यह समाधान हो ही जाएगा कि कत्ल कर देने से कुछ तो तड़फन हकीकत को होगी और फिर इसी प्रकार का अपराध करने के लिए न वह स्वयं जीवित रह पाएगा और न किसी अन्य को ऐसा कोई अपराध करने का साहस होगा।

६

मुसलमानों के पैगम्बर का यह फतवा ठीक वैसा ही फतवा था जैसा ईसाइयों और यहूदियों में होता है।

कितने ही गैर-मुसलमान ऐसे अपराधों के लिए प्राण-दण्ड प्राप्त कर चुके थे जिनके लिए मुसलमानों को निरपराध घोषित

कर दिया जाता था।

आखिर यह प्रश्न तो है ही कि अपराध क्या है ? क्या कोई कर्म यदि मुसलमान करे तो वह अपराध के योग्य नहीं हो सकता तथा उसे कोई अन्य करे तो वह अपराध-योग्य हो जाएगा ? कोई भी बुद्धिशील व्यक्ति इसको स्वीकार नहीं कर सकता। कोई भी कर्म अपराध है अथवा कि निरपराध, इस बात पर निर्भर करता कि उसको करने वाला किस जाति, धर्म, सम्प्रदाय का है अथवा वह अधिकारी है या कि सर्वसाधारण व्यक्ति, इसका निर्णय इन बातों से सम्बन्धित नहीं हो सकता। किसी भी कर्म का मूल्यांकन उसके फलाफल पर ही निर्भर कर सकता है।

गाली देने से, जिसको गाली दी जाती है उसको दुःख होता है, इस कारण यह अपराध है। इस प्रकार का दुःख हकीकतराय को हुआ है अथवा कि इलामुदीन को हुआ है, इसका अपराध से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। जब कोई न्यायाधीश गाली का मूल्यांकन इस बात से करने लगता है कि गाली किसी गौर वर्णीय को दी जा रही है अथवा कि किसी कृष्णवर्णीय को तो वह न्यायाधीश न्यायकर्ता नहीं माना जा सकता।

यही बात हकीकतराय पर आरोपित अपराध के निर्णय करने वाले के विषय में भी विचारणीय है। और उस पर भली-भांति विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सियालकोट का वह काज़ी, शरा की वह पुस्तक जिसको देखकर काज़ी ने अपना निर्णय दिया था और उस शरा की पुस्तक को कहने अथवा संकलित करने वाले दोनों, ये सभी अन्यायी थे।

शरा की उस पुस्तक और उसको पढ़कर अपना फतवा देने वालों द्वारा जघन्य अपराध कृत्य हुआ था।

हिन्दू समाज में तो काले, गोरे, हिन्दू, अहिन्दू, हिन्दुस्तानी अथवा ईरानी इत्यादि के नाम से अपराध नहीं माने जाते।

कर्म के अच्छा-बुरा होने, उसके उचित-अनुचित होने का अनुमान कर्म अथवा कर्म के करने वाले के स्वयं में अच्छा-बुरा होने से ही लगाया जाता है।

व्यापक धर्म और अधर्म के विषय में मनुस्मृति में इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

> **धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
> **धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥६-९२॥**

अर्थात्—धैर्य रखना, पश्चात्ताप करने वाले को क्षमा कर देना, मन को नियन्त्रित रखना, चोरी न करना, मन-वचन-कर्म में पवित्रता रखना, इन्द्रियों को नियन्त्रित रखना, बुद्धियुक्त व्यवहार करना, ज्ञानयुक्त व्यवहार करना, सत्य बोलना और क्रोध न करना—धर्म के ये दस लक्षण हैं।

इसमें इन कर्मों को करने वाले अथवा उससे हानि-लाभ उठाने वाले कौन हैं; हिन्दू हैं अथवा हिन्दू से इतर ईसाई, मुसलमान, पारसी और यहूदी आदि हैं, इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है। अर्थात् यह मानवमात्र के लिए है। कर्म और उस कर्म के फल से ही उसके धर्ममय कर्म होने अथवा अधर्ममय होने का निश्चय किया जाता है।

शरा के आधार पर जो अन्याय और अत्याचार हुआ है, आज भी हो रहा है और भविष्य में भी होगा। उस सबके लिए वह व्यक्ति दोषी है, जिसने इस प्रकार की शरा का संकलन किया है। इसमें यह प्रयत्न किया गया है कि कोटि-कोटि अन्धविश्वासियों को कुछ-एक हाकिमों की सुख-सुविधा के लिए बलिदान कर दिया जाए। इसके साथ ही वे लोग भी दोषी हैं, कदाचित् पहले से अधिक, जो इस प्रकार की शरा को मानने वालों को तथा उसके अनुसार चलन करने वालों को सहन करते हैं।

हकीकतराय के विवाद में गाली तो मुसलमान विद्यार्थियों ने भी दी थी, न केवल दी थी अपितु पहले गाली उन्होंने ही दी थी, किन्तु शरा के अनुसार उनको दोषी नहीं माना गया।

हकीकतराय को गाली देने के लिए विवश किया गया था। उसकी आराध्या को निरर्थक ही गाली देकर क्रोधित किया गया था। उसका वह क्रोध करना किसी प्रकार का पापकृत्य नहीं था। उसने तो गाली देने वाले अपने साथियों के दुष्कृत्य की उपेक्षा भी की थी। किन्तु जब वे किसी प्रकार भी नहीं माने और निरन्तर उसकी आराध्या देवी को गाली देते रहे तो उसने उनका मुख बन्द करने के उद्देश्य से ही उनकी फातिमा के लिए उस प्रकार के शब्दों का ही प्रयोग किया था जिस प्रकार का शब्दप्रयोग वे मुसलमान विद्यार्थी कर रहे थे।

धर्म के जिन दस लक्षणों का उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं वे किसी समुदाय-विशेष के लिए हों, ऐसा हिन्दू समाज नहीं मानता। उनका विधान मानव-मात्र के लिए समानरूप से किया गया। उसमें यह नहीं कहा गया कि ईश्वरभक्त को धैर्य धारण करना चाहिए और ईश्वरभक्तों को ही धैर्य धारण करने का अधिकार है और उन पर ही उस धैर्य का प्रयोग किया जाए अन्यों के साथ न किया जाए।

उक्त दस धर्मों का उल्लेख करने के उपरान्त मनुस्मृति में उसके अगले श्लोक में कहा गया है—

> **दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्रा समधीयते।**
> **अधीत्य चानुवर्तन्ते ये यान्ति परमां गतिम्॥ ६-९३॥**

अर्थात्—धर्म के जो दस लक्षण ऊपर बताए हैं वे सब विप्र (श्रेष्ठ) जनों के पालन के लिए हैं। जो इन धर्मों का पालन कर उन पर आचरण करते हैं, वे श्रेष्ठ मार्ग को जाते हैं।

श्रेष्ठ मार्ग को जाने का अभिप्राय है श्रेष्ठ जन जो लोक-

परलोक में सुविधा और ऐश्वर्य को पाने की इच्छा रखते हैं उनको इन दस धर्मों का पालन करना चाहिए। इसमें हिन्दू-मुसलमान का कुछ भी अभिप्राय नहीं।

एक बात और समझ लेनी चाहिए कि जब कोई हिन्दू-पद्धति से राज्य प्राप्त करता है तो वह सब प्रकार की और सब विचार की प्रजा के पालन करने वाला हो जाता है। उसके लिए उक्त धर्म का पालन स्वयं करना और प्रजा से कराना कर्तव्य हो जाता है।

परन्तु इस्लाम में तो राज्य और मजहब को परस्पर सम्मिलित कर दिया गया है।

धर्म और मजहब, इन दोनों में भी अन्तर है। धर्म तो धारण करने की अर्थात् आचरण करने का कर्म है। मजहब मानने और समझने की क्रिया है।

इसको इस प्रकार समझना चाहिए : सत्य बोलना तथा उस पर व्यवहार करना, यह आचरण करने की बात है। परन्तु दुर्गा भवानी पर श्रद्धा और विश्वास करना अथवा शिव पर श्रद्धा-विश्वास करना यह मानने की बात है। इसे ही मजहब कहा जाता है।

मानने में भी, मान कर जब कुछ कर्म किया जाए तब वह कर्म भी धर्म अथवा अधर्म हो जाता है। उदाहरण के रूप में कोई मोहम्मद साहब को परमात्मा का दूत मानता है अथवा कोई कृष्ण को परमात्मा का दूत मानता है। जब तक वह इस प्रकार मानता है जब तक तो यह मजहब की ही बात है। परन्तु जब मोहम्मद अथवा कृष्ण को मानता हुआ तलवार उठाकर वार करने लगता है तो वह मजहब के क्षेत्र से बाहर निकलकर कर्म के क्षेत्र में उतर जाता है।

जब तक मौखिक प्रेरणा देता है तब तक तो वह मजहब के ही क्षेत्र में रहता है। परन्तु वह किसी अन्य पर बल-प्रयोग कर,

बिना उसको जाने ही किसी पीर पैगम्बर अथवा अवतार की बात मानने अथवा मनाने का दुष्प्रयत्न करता है तो वह कर्म के क्षेत्र में आ जाता है।

इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है :

हिन्दू कृष्ण-भक्त है। वह कृष्ण को सर्वश्रेष्ठ विचारक मानता है। कृष्ण ने कहा भी है—

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम् ।

अर्थात्—साधुओं का परित्राण और दुष्टों का विनाश करना धर्म है।

इतना ही जो व्यक्ति मानता है, उसका यह मानना मजहब है। परन्तु जब सामने खड़े व्यक्ति को मारने अथवा दण्ड देने को आता है तो फिर यह निर्णय करना होता है कि वह व्यक्ति जिसको दण्ड दिया जा रहा है, दुष्ट है भी अथवा कि नहीं।

बिना निर्णय किए कि दण्डित किया जाने वाला व्यक्ति साधु है अथवा दुष्ट है, दण्ड का निर्णय करना पाप-कर्म होगा। यह निर्णय करना उक्त धर्म के लक्षणों से ही संभव है।

इस आधार पर यदि हकीकतराय का अपराध दण्डनीय माना गया था तो मुसलमान लड़कों का अपराध उससे भी अधिक दण्डनीय माना जाना चाहिए था क्योंकि मुसलमान लड़कों ने पहले गाली दी थी।

किन्तु काज़ी और उलेमा शरा से अधिक कुछ सोच-विचार करने में असमर्थ सिद्ध हुए।

हकीकतराय के विवाद में उसको मुसलमान लड़कों के समान दण्डनीय अथवा प्रशंसनीय नहीं माना गया। विपरीत इसके मुसलमान लड़कों को उनके मुसलमान होने के कारण निरपराध घोषित कर दिया गया। यह अन्याय था।

जब सियालकोट के काज़ी को बताया गया कि मुसलमान

लड़कों ने पहले दुर्गा भवानी के प्रति अपशब्दों का प्रयोग किया था तो उसने उनके मुसलमान होने के कारण उन्हें दण्डनीय नहीं माना।

यही बात 'साहि इस्लाम' हदीस में १२२ पर लिखी गई है। उसमें कहा गया है कि 'पैगम्बर के पक्ष में बात इल्जाम से बरी होगी।' अर्थात् इस्लाम का नाम लेकर किसी पर कुछ भी अन्याय अथवा अत्याचार किया जा सकता है।

काज़ी का यह फतवा कि 'हकीकतराय ने अपराध किया है और उस अपराध के लिए मृत्युदण्ड का विधान है' काज़ी का उतना दोष नहीं था। यह तो वास्तव में हदीस का ही दोष था।

हदीस के दोषयुक्त होने के कारण कदाचित् काज़ी को उस प्रकार का फतवा देना पड़ा था। अथवा यों कहा जाए कि उसको उस प्रकार का फतवा देने के लिए 'निमित्त कारण' मिल गया था और उसने गैर-मुसलमान के प्रति इस प्रकार एक-पक्षीय निर्णय देकर अन्याय कर दिया।

७

काज़ी ने हकीकतराय के विवाद में फतवा देते हुए कह दिया कि 'शरा के अनुसार हकीकतराय को मृत्यु-दण्ड दिया जाए और मुसलमान लड़कों के विपरीत कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती, क्योंकि वे मुसलमान हैं और शरा में मुसलमान पर किसी प्रकार के दोष का उल्लेख नहीं है।'

यह आज्ञा एक अदालत की थी, किन्तु इसको कार्यान्वित करने का कार्य नगर के हाकिम का था।

वर्तमान काल में भी राज्य-व्यवस्था में यही नियम लागू है। किसी अपराधी को दण्ड देने की आज्ञा जिलाधीश अथवा न्यायाधीश करते हैं परन्तु उस आज्ञा को क्रियान्वित करने का कार्य राज्याधिकारी करते हैं। अतः हकीकतराय को दिए गए दण्ड का समर्थन नगर के हाकिम द्वारा ही होना था।

काजी की अदालत से हकीकतराय को सियालकोट के हाकिम के सम्मुख उपस्थित किया गया। वहाँ जाकर हाकिम को काजी का फतवा सुना दिया गया।

ऐसा कहा जाता है कि काजी के निर्णय पर जिला अधिकारी को भी सन्देह हुआ था। उसको लगा कि कुछ अनुचित किया जा रहा है। परन्तु जब उसको बताया गया कि अपराधी घोषित किए गए व्यक्ति हकीकतराय ने शरा के विरुद्ध अपराध किया है तो वह हाकिम भी शरा के निर्णय को अशुद्ध सिद्ध करने में असमर्थ रहा।

काजी की ही भाँति नगर-अधिकारी भी मुसलमान था और वह भी कुरान और हदीस के उल्लेख को किसी प्रकार भी गलत नहीं मान सकता था। तदपि उसने यह अवश्य कहा कि बच्चों के झगड़े को इतना तूल नहीं दिया जाना चाहिए। इसके लिए कोई साधारण-सा दण्ड दिया जा सकता है।

काजी ने यह सुनकर कह दिया, 'यदि हकीकतराय इस्लाम स्वीकार कर ले तो इसका अपराध क्षमा योग्य घोषित किया जा सकता है।'

काजी का यह निर्णय भी शरा के अनुसार ही था। उसमें उल्लेख है कि गैर-मुसलमान के लिए जो दण्डनीय है वह मुसलमान के लिए नहीं है। इस कारण हकीकतराय यदि मुसलमान हो जाए तो वह इस्लाम का ही एक घटक माना जाएगा, तब इसका अपराध दण्डनीय नहीं होगा।

इस प्रकार के नियम का उल्लेख केवल इस्लाम के हदीस

में ही है, किसी अन्य मजहब में ऐसा नहीं पाया जाता। धर्म के विचार से तो यह कहना भी अपराध है कि एक ही प्रकार का दोष जब गैर-मुसलमान द्वारा किया जाए तो अपराध है और मुसलमान द्वारा किया जाए तो वह अपराध नहीं है।

इस बात में किसी प्रकार की भी कोई युक्ति नहीं थी। परन्तु हाकिम शरा की इस हदीस को जानता था। इस कारण वह इसके विरोध में कुछ कह नहीं पाया। हदीस में उल्लिखित नियम को वह किसी प्रकार भी गलत नहीं कह सकता था।

हदीस में तो स्पष्ट-रूप में यह उल्लेख किया गया है—

"Abusing a Muslim is an outrage and fighting against him is unbelief."

(साहि १२२)

(Quoted from "*Understanding Islam through Hadis*: Ram Swarup, p. 4)

अर्थात् किसी मुसलमान को गाली देना घोर अपराध है और इससे लड़ना कुफ्र है।

साहि इस्लाम में एक और घटना के विषय में लिखा है—

"God's mind is made up with regard to the polytheists ; therefore, a true believer should not even seek blessing on their behalf. As the 'Quran' says : "It is not meet for the Prophet and for those who believe, that they should beg pardon for the polytheists, even though they were their kith and kin, after it had been known to them that they were the denizens of Hell" (9-113)

(Quoted from "*Understanding Islam through Hadis* : Ram Swarup, p. 10-11)

अर्थात्—परमात्मा ने मन में संकल्प कर लिया था कि बहु-देवतावाद वालों से कैसा व्यवहार करना है। इस कारण एक सत्य विश्वास करने वालों को उनके लिए परमात्मा से आशीर्वाद

भी नहीं माँगना चाहिए। कुरान ने भी कहा है कि 'यह पैगम्बर और विश्वास करने वालों के लिए उचित नहीं कि वे बहुदेवता मानने वालों के लिए परमात्मा से क्षमा माँगें। भले ही वे उनके सम्बन्धी हों, जब यह पता चल गया कि वे नरक की आग में झुलसने वाले हैं। (६ : ११३)

वास्तव में दोष उस मजहब का है जो यह समझा भी नहीं सकता कि मुसलमान के अतिरिक्त अन्य कोई भला कर्म कर सकता है। जो धर्म के लक्षण हैं वे उस परिधि में आ ही नहीं सकते।

इसके विपरीत हिन्दू समाज में यह माना जाता है—

'आत्मवत् सर्वभूतेषु।' सब प्राणियों में अपने समान ही आत्मा समझो।

इसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई कर्म किसी मुसलमान में अच्छे हैं और दूसरे के हित में हैं तो वह किसी दूसरे समाज में भी वैसा ही हो सकता है।

हिन्दू समाज में अच्छा और बुरा कर्म के आधार पर होता है, न कि कर्म करने वाले की जाति-बिरादरी के आधार पर। यदि कोई ब्राह्मण झूठ बोलता है तो वह भी पापी है और यदि कोई शूद्र झूठ बोलता है तो वह भी पाप ही करता है। कर्म धर्म के अनुसार अथवा उसके विपरीत हो सकता है, कर्म करने वाला उसके फल को भोगता है, भले ही वह ब्राह्मण हो अथवा धनी-मानी वैश्य हो।

मुसलमानी शरा के अनुसार हकीकतराय के विवाद में सियालकोट नगर का हाकिम विवश हो गया। उसकी मानवता नहीं मानती थी किन्तु मजहबी आदेश उसको विवश कर रहा था। अत: उसने स्वयं को इस जघन्य कृत्य से अलिप्त रखने के लिए कह दिया कि 'वह शरा का विरोध नहीं कर सकता।' यद्यपि उसने दिया जाने वाला दण्ड अपराध की तुलना में बहुत

अधिक समझा था। इस कारण उसने इस विवाद को सूबे के हाकिम के पास लाहौर भेज दिया।

इस प्रकार हकीकतराय को बन्दी बनाकर लाहौर लाया गया। हाकिम ने सियालकोट नगर के काजी को तथा हकीकतराय के माता-पिता को भी सूबा अधिकारी के न्यायालय में उपस्थित होने के लिए कह दिया।

इस प्रकार नगर से यह मामला सूबे की राजधानी तक पहुँच गया।

८

सियालकोट की अपेक्षा लाहौर का वातावरण कम संकीर्ण था। हकीकतराय को जब हाकिम के सम्मुख उपस्थित किया गया तो उसने हकीकतराय से पूछा, "तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जाते!"

हकीकतराय ने बुद्धिशील हिन्दू बालक की भांति सहज ही इसका उत्तर देते हुए कहा, "मुझ पर जो अभियोग लगाया गया है और जिस अपराध में मुझे दण्ड दिया गया है, उसका सम्बन्ध मेरे मत-परिवर्तन से नहीं है। जो अपराध मैंने किया है मेरे मकतब में पढ़ने वाले उन मुसलमान विद्यार्थियों ने भी वही अपराध किया है। उन्होंने मेरी आराध्या दुर्गा भवानी के प्रति अपशब्दों का प्रयोग किया है। इसलिए जो कुछ भी दण्ड उन मुसलमान लड़कों को दिया जाना चाहिए वही मुझको भी दिया जाए।"

लाहौर के हाकिम ने जब यह युक्ति सुनी तो वह मुख देखता

रह गया। उस समय उसने एक धनीमानी की जमानत पर हकीकतराय को छोड़ दिया और अभियोग की सुनवाई के लिए एक तिथि निश्चित कर दी।

सियालकोट से इस अभियोग में साक्षी के रूप में जो काज़ी आया था, वह भी सरकारी पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए आया था। उसने जब अपने कथन में शरा की दुहाई दी तो लाहौर के हाकिम ने कहा, "लड़का दण्डनीय हो सकता है। किन्तु उसका दण्ड मृत्यु ही है ऐसा तो शरा में नहीं लिखा है? इसीलिए मैंने विचार करने के लिए अगली तिथि निर्धारित कर दी है। तब तक इस विषय पर शान्ति से विचार कर लिया जाएगा।"

यह सुनकर काज़ी बहुत नाराज हो गया। वह समझता था सूबे के हाकिम को शरा में टीका-टिप्पणी करने का अधिकार नहीं था। अन्य कोई उपाय न देख उस काज़ी ने जुम्मे के दिन जब सामूहिक नमाज के बाद उपदेश होने लगा तो उसमें इस विषय को उठाया। उसका विचार था कि इस प्रकार मुसलमानों को भड़काकर सूबे के हाकिम पर दबाव डालना चाहिए।

काज़ी ने कहा कि सूबेदार शरा के अभिप्राय स्वयं अपने मन से नहीं लगा सकता। वह अरबी भाषा का आलम न होने से भी शरा के अर्थ ठीक प्रकार से समझने में असमर्थ है। अतः उसको चाहिए कि वह काज़ी द्वारा किए गए अर्थों को ही ठीक मानकर उस पर कार्य करे।

उसका परिणाम यह हुआ कि उस दिन जुम्मे की नमाज पढ़ने के लिए जो सहस्रों मुसलमान वहाँ एकत्रित हुए थे वे यह सुनकर भड़क उठे। फिर क्या था, जब इस अभियोग की अगली तिथि आई तो उस दिन वे सारे मुसलमान काज़ी के भड़काने पर न्यायालय में उपस्थित हो गए। मुसलमानों की ऐसी भीड़ को उपस्थित देखकर हाकिम ने उनसे पूछा कि वे वहाँ किसलिए एकत्रित हुए हैं?

एकत्रित भीड़ के मुखिया ने उसका उत्तर देते हुए कहा, "हम यहाँ इन्साफ होना देखने आए हैं। नगर में लोगों को यह शक हो गया है कि सूबेदार को बहुत बड़ी धनराशि रिश्वत में दी गई है इसलिए वह काजी की बात को न मानकर शरा के मनमानी मायने निकालकर इन्साफ करना चाहता है।"

इस प्रकार भीड़ को एकत्रित देखकर और मुखिया की धमकी सुनकर सूबेदार डर गया। वह स्वयं भी दिल्ली के शहंशाह के अधीन था। वह जानता था कि यदि इसकी शिकायत दिल्ली भेज दी गई तो वहाँ काजी द्वारा शरा के जो अर्थ किए गए हैं उनको ही स्वीकार कर लिया जाएगा।

शहंशाह के दरबार में यदि उस पर सन्देह कर लिया गया कि उसने रिश्वत लेकर इस मामले का निर्णय किया है तो उसकी सूबेदारी तो जाएगी ही साथ ही उसको भी प्राण-दण्ड दिया जा सकता है। अथवा ऐसा ही कोई कठोर दण्ड दिया जा सकता है।

इस विचार के आते ही वह घबरा उठा। उसने हकीकतराय को समझाने का यत्न किया कि वह मुसलमान बन जाए।

किन्तु हकीकतराय अपने वचन पर दृढ़ रहा। उसने मुसलमान बनना स्वीकार नहीं किया। उसका कहना था कि उसने किसी के कहने से हिन्दू धर्म स्वीकार नहीं किया था। वह परमात्मा की इच्छा के अनुरूप ही हिन्दू माता-पिता के घर में उत्पन्न हुआ है। वह मुसलमान बनकर परमात्मा की आज्ञा के उल्लंघन का अपराधी नहीं बन सकता। वह कदापि अपना धर्म नहीं छोड़ेगा।

यह तर्क ऐसा था कि कोई भी मुसलमान इसको अस्वीकार नहीं कर सकता था। यदि इस संसार में सब-कुछ परमात्मा की आज्ञा से हो रहा है तो फिर हकीकतराय की युक्ति निरुत्तर कर देने वाली ही थी।

काज़ी ने जब यह सुना तो उसने यह स्वीकार नहीं किया। उसने कह दिया, "ख़ुदा की बातों में किसी प्रकार की दलील नहीं दी जा सकती।"

अपनी बात को सिद्ध करने के लिए उसने कुरान की एक आयत का भी उल्लेख कर दिया।

काज़ी की बात सुनकर फिर हाकिम विवशता अनुभव करने लगा। उसने एक बार फिर यत्न किया कि किसी प्रकार हकीकतराय मुसलमान बनना स्वीकार कर ले तो उसके प्राण बच सकते हैं। उसने हकीकतराय को बहुत समझाया।

हकीकतराय ने उसी प्रकार अस्वीकार कर दिया। उधर हाकिम यह अनुभव कर रहा था कि वास्तव में हकीकतराय के साथ अत्याचार हो रहा है। इसके साथ ही उसको इस बात का भय भी सता रहा था कि उसकी ईमानदारी पर सन्देह व्यक्त किया जा रहा है। अतः उसका यत्न यही था कि किसी प्रकार का मध्यम मार्ग निकालकर इस अत्याचार को रोका जाए। उसके लिए एकमात्र मार्ग हकीकतराय का मुसलमान हो जाना ही था।

उसी के लिए ही हाकिम यत्न कर रहा था। उधर हकीकत-राय इसको सरासर अन्याय मानता था। वह अपना हिन्दू-धर्म भी छोड़ना नहीं चाहता था।

मुसलमानों की अप्रत्याशित भीड़ को देखकर सूबेदार बहुत डर गया। भीड़ को काज़ी ने भड़का दिया था, इस कारण वह उस भीड़ की इच्छा के विपरीत भी अपना निर्णय दे नहीं सका।

एक मुसलमानी राज्य में ग़ैर-मुसलमान तो न्याय का अधिकार रखता ही नहीं। जो दीनदार हो, मोहम्मद साहब को पैगम्बर मानता हो, वही मुसलमानी राज्य का नागरिक माना जाता है। इस कारण कोटि-कोटि हिन्दू, जो उस समय भारत-वर्ष में रह रहे थे, इस्लामी राज्य में उनको भेड़-बकरियों से

अधिक कुछ नहीं माना जाता था। जो थोड़े-से मुसलमान बल-पूर्वक भारतवर्ष में घुस आए थे, वे ही उस समय भारतवर्ष के नागरिक समझे जाते थे। इस्लामी राज्य में उनके कथन को ही प्रजा का कथन स्वीकार किया जाता था।

इस्लाम का अपमान और हज़रत की लड़की को गाली देना, दोनों को एक समान ही समझ लिया गया। यद्यपि वहाँ यह लिखा हुआ था कि इस्लाम की तौहीन करने वाला दोजख की आग में जलेगा, उसका अर्थ काज़ी ने स्वयं ही यह निकाल लिया था कि अपराधी को दोजख की आग में डालने का अधिकार भी उसी को प्राप्त है। उसने यह फतवा दे दिया कि हकीकतराय को तुरन्त दोजख की आग में झौंक दिया जाए। इसके लिए जब खुदा ने उसके मरने का समय निर्धारित कर दिया है तो उसमें फिर विलम्ब किस बात का? इसमें किसी प्रकार की बाधा न डाली जाए।

काज़ी ने अपने समर्थन के लिए नगर के अशिक्षित मुसल-मानों को भड़काकर एकत्रित कर लिया था।

विवश होकर लाहौर का सूबेदार भी हकीकतराय को मुसलमान हो जाने की राय देने लगा। किन्तु जब हकीकतराय ने मुसलमान बनना स्वीकार नहीं किया तो उसको भी काज़ी के फतवे को ही स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा।

यह प्रश्न उठता है कि हकीकतराय केवल उन लोगों की बात रखने के लिए ही मुसलमान बन जाता। वह क्यों नहीं बना? इसमें प्रबल युक्ति यही है कि वह मजहब, जिसे हकीकत-राय धर्म मानता था, उसमें झूठ के लिए कोई स्थान नहीं है। झूठ बोलना पाप है, अपराध है।

हकीकतराय समझता था कि यदि उसने झूठ बोल दिया तो इससे तो वह धर्मच्युत हो जाएगा। वह धर्म को अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानता था।

इसके अतिरिक्त वह यह भी भली-भांति जानता था कि जिस क्षण उसको मुसलमान बनाया गया उसी क्षण उसको बलात् गो-मांस खिलाया जाएगा। यह उसे स्वीकार नहीं था। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि यदि वह एक बार कहने को भी मुसलमान बन गया तो उस समय के ब्राह्मण देवता उसको पुनः किसी भी प्रकार हिन्दू-धर्म में वापस लेने के लिए उद्यत होंगे ही नहीं।

यदि वह अपनी आत्मा की पुकार के विरुद्ध कुछ करे भी तो इससे उसको कुछ लाभ होने वाला नहीं था।

हकीकतराय की बुद्धि में उस समय क्या बात समाई हुई होगी, इसका अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। प्रत्यक्ष में तो यही समझ में आता है कि वह झूठ बोलकर धर्मच्युत हो अपने प्राणों को बचाना नहीं चाहता था। वह समझता था कि हिन्दू-धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है। वह यह भी समझता था कि उसके अपने पूर्वजन्म के सुकृत के आधार पर उसको हिन्दू-धर्म से सम्बन्धित परिवार में जन्म मिला है। अतः वह यही उचित समझता था कि इस धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए।

वह यह समझता होगा कि यदि वह झूठ-मूठ में ही इस्लाम स्वीकार करने की बात करता है तो वह पाप का भागी बनेगा। इस प्रकार वह धर्म से भी विचलित हो जाएगा। झूठ बोलना अधर्म है।

उसने निश्चय कर लिया था कि वह किसी प्रकार भी अपने धर्म का त्याग नहीं करेगा। कदाचित् वह यह भी समझता था कि दुर्गा माता, जो उसकी इष्ट देवता थीं, उससे वह झूठ नहीं बोल सकता था।

कुछ भी हो, एक बात तो निर्विवाद थी कि धर्म के लिए न तो वह धोखाधड़ी को पसन्द करता था और न स्वयं धोखाधड़ी करना चाहता था। सबसे अधिक सोचने की बात जो भी वह

यह कि मार डालने की धमकी से डरकर वह अधर्म का कार्य करेगा तो उससे वह पतित हो जाएगा। अपना पतन भी उसको स्वीकार नहीं था।

हकीकतराय को मुसलमान बनने के लिए अनेक प्रकार से प्रेरणा दी गई, लोभ भी दिया गया, माता-पिता की प्रसन्नता की बात की गई, पत्नी के सुहाग के विषय में कहा गया, लम्बे जीवन की सुख-सुविधा की ओर आकर्षित करने का यत्न किया गया किन्तु धर्मवीर हकीकतराय ने यह सब छोड़कर बलिदानी बनना ही श्रेयस्कर समझा और वह अपने प्रण पर दृढ़ रहा।

इस प्रकार विवश होकर लाहौर के सूबेदार को भी सियालकोट के काज़ी के फतवे द्वारा निर्धारित दण्ड को ही स्वीकार कर उसे प्राण-दण्ड की आज्ञा देनी पड़ी।

९

वर्तमान समय में मृत्यु-दण्ड प्राप्त अपराधी को सार्वजनिक रूप में दण्ड नहीं दिया जाता, अपितु उसको एकान्त स्थान पर फाँसी दी जाती है। कारागार में जहाँ पर दण्ड का विधान होता है, वहाँ पर किसी भी बाहरी व्यक्ति के जाने की अनुमति नहीं होती।

परन्तु अरब आदि देशों में उस समय, जिस समय की यह घटना है ऐसी प्रथा नहीं थी। वहाँ मृत्यु-दण्ड सार्वजनिक प्रदर्शन का कार्य माना जाता था। अरब देशों में उस समय गम्भीर अपराधों के लिए अपराधी को पत्थर मार-मारकर निर्जीव कर दिया जाता था या फिर तलवार की धार से उसका सिर धड़ से

अलग कर दिया जाता था। हकीकतराय के लिए भी यही रीति उपयुक्त मानी गई।

'साहिह इस्लाम' में एक हदीस इस प्रकार है—

A young bachelor found employment as a servant in a certain household and committed zina with the master's wife. His father gave one hundred goats and a slave-girl in ransom, but when the case was brought before Muhammad, he judged it "according to the Book of Allah" He ordered the slave-girl and the goats to be returned and punished the youngman for fornication "with one hundred lashes and exile for one year, the woman was punished for adultery" Allah's Messenger made pronouncement about her and she was stoned to death.

"Sahih 4029"

(Quoted from—*Understanding Islam through Hadis*, Ram Swarup, p. 93)

अर्थात्—एक अविवाहित युवक को किसी गृहस्थ के घर में सेवा-कार्य प्राप्त हो गया। यह स्थान रेगिस्तानी था। उस व्यक्ति ने अपने स्वामी की पत्नी के साथ व्यभिचार किया और वह पकड़ा गया। उस युवक ने एक सौ बकरी और एक दासी उस स्त्री के पति को दे दी। परन्तु यह विषय जब मोहम्मद साहब के ज्ञान में आया तो उसने अल्लाह की पुस्तक (कुरआन) को पढ़कर उसके अनुसार निर्णय किया। उसका कहना था कि बकरियाँ और गुलाम-औरत वापस कर दी जाएँ। युवक को एक सौ कोड़े लगाए जाएँ और एक वर्ष के लिए उसको जलावतन कर दिया जाए। औरत को दुराचार के लिए दण्ड दिया गया। अल्लाह के पैगम्बर ने यह घोषणा की और वह औरत पत्थर मार-मारकर मार डाली गई।

अनुवादक ने इस पर निम्न टिप्पणी की है—

These cases provide a model for all future presecutions. When a woman is to be stoned, a chest-deep hole is dug for her, just as was done in the case of Ghamdiya (the woman of Ghamid), so that her nackedness is not exposed and the modesty of the watching multitude is not offended. No such hole need be dug for a man, as no such hole was dug for Ma'iz, the self-confessed adulterer whose case we have just narrated.

The stoning is begun by the wittness, followed by the Imam or Qazi, and then by the participating believers. But in the case of a self confessed criminal, the first stone is cast by the Imam or Qazi, following the example of the Prophet in the case of Ghamdiya. And then the multitudes follow. The Quran and the Sunnah, in fact, enjoy the believers to both watch and actively participate in the execution. "Do not let pity for them take hold of you in Allah's religion...... and let a party of the believers witness their torment", the Quran urges while prescribing punishment for the fornicators.

("*Understanding Islam through Hadis* : Ram Swarup, p. 93-94.")

अर्थात्—इस प्रकार के विवाद भविष्य में ध्यान रखने के लिए उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जब किसी स्त्री को पत्थर मारकर दण्ड दिया जाता था तो उसको छाती तक भूमि में गड्ढा खोदकर गाड़ दिया जाता था। जैसा गमादिया (गमीदी की पत्नी) के मामले में किया गया था। जिससे उसका नंगापन दिखाई न दे। किन्तु पुरुष के लिए इस प्रकार गड्ढा नहीं खोदा

जाता था। स्व-स्वीकृत दुराचारी माइज के लिए ऐसा गड्ढा नहीं खोदा गया था। जैसाकि ऊपर बताया गया है।

अपराध के साक्षी लोग पत्थर मारने आरम्भ करते हैं, उसके बाद एकत्रित मोमिन पत्थर मारते हैं। परन्तु जो अपना अपराध स्वयं स्वीकार कर लेता है उसको इमाम पत्थर मारना आरम्भ करता है अथवा काजी आरम्भ करता है। इसमें वे पैगम्बर के उदाहरण का अनुकरण करते हैं, जैसा गमीदिया के लिए किया गया था। उसके बाद अन्य मोमिन, उस समय जो वहाँ पर विद्यमान होते हैं, पत्थर मारने आरम्भ करते हैं। यह हिदायत दी गई है कि उस समय किसी के मन में दयाभाव नहीं आना चाहिए। अल्लाह के कार्य में और मजहबी विषय में······और मोमिनों को इस दुराचार के दण्ड को देखना चाहिए।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि इस्लाम में फांसी, अथवा मृत्युदण्ड देने के समय लुकाव-छिपाव को स्थान नहीं था। अतः यह विख्यात है कि हकीकतराय को लाहौर नगर के बाहर रावी के किनारे पर नगर से तीन मील लगभग के अन्तर पर तलवार से कत्ल किया गया था। उस समय सहस्त्रों लोग वहाँ पर एकत्रित हो गए थे। सबके मुख से 'त्राहि-त्राहि' का स्वर गूंज रहा था।

हत्या के उपरान्त हकीकतराय का शव उसके सम्बन्धियों को दे दिया गया। उन्होंने वहीं रावी के तट पर ही उसका दाह-संस्कार कर दिया।

इस अत्याचार से यह समझा जाता है कि हिन्दुस्तान में इस्लामी राज्य की जड़ें हिल गई थीं। जिस-जिसने भी इस घटना के विषय में सुना, इस क्रूर एवं जघन्य कृत्य के लिए सबकी आँखों में आँसू बह पड़े थे।

लाहौर नगर से तीन-चार मील दूरी पर रावी नदी के तट पर खोजेशाह के कोट के क्षेत्र में हकीकतराय की समाधि बनाई

गई। उसके बाद लाहौर के हिन्दुओं ने वहाँ मेला लगाना आरंभ किया। बसन्त पंचमी को जब धर्मवीर हकीकतराय की हत्या की गई थी, प्रतिवर्ष लाहौर के सहस्रों नर-नारी वहाँ एकत्रित होते थे और अपने श्रद्धा के फूल समाधि पर चढ़ाते थे।

जब तक सन् १९४७ में भारत का विभाजन नहीं हो गया और लाहौर पाकिस्तान का अंग नहीं बन गया तब तक यह मेला जुड़ता ही रहा, किन्तु अब सुना गया है कि पाकिस्तान सरकार ने उस स्थान पर समाधि के चिह्न तक को मिटा दिया है।

इस विषय पर पंजाब के एक विद्वान डॉक्टर गोकुल चन्द नारंग ने अपने उद्‌गार एक कविता के रूप में इस प्रकार व्यक्त किए हैं—

हकीकत को फिर ले गए कत्लगाह में।
हजारों इकट्ठे हुए लोग राह में॥
चले साथ उसके सभी कत्लगाह को।
हुई सख्त तकलीफ शाही सिपाह को॥
किया कत्लगाह पर सिपाहियों ने घेरा।
हुआ सबकी आँखों के आगे अँधेरा॥
जो जल्लाद ने तेग अपनी उठाई।
हकीकत ने खुद अपनी गरदन झुकाई॥
फिर इक वार जालिम ने ऐसा लगाया।
हकीकत के सिर को जुदा कर गिराया॥
उठा शोर इस कदर आहो फुगां का।
कि सदमे से फटा परदा आसमाँ का॥
मची सख्त लाहौर में फिर दुहाई।
हकीकत की जय हिन्दुओं ने बुलाई॥
बड़े प्रेम और श्रद्धा से उसको उठाया।
बड़ी शान से दाह उसका कराया॥

तो श्रद्धा से उसकी समाधि बनाई।
वहाँ हर वर्ष उसकी बरसी मनाई॥
वहाँ मेला हर साल लगता रहा है।
दिया उस समाधि में जलता रहा है॥
मगर मुल्क तकसीम जब से हुआ है।
वहाँ पर बुरा हाल सबसे हुआ है॥
वहाँ राज यवनों का फिर आ गया है।
अँधेरा नये सिरे से फिर छा गया है॥
मगर हिन्दुओं में है कुछ जान बाकी।
शहीदों बुजुर्गों की पहचान बाकी॥
शहादत हकीकत की मत भूल जाएँ।
श्रद्धा से फूल उस पर अब भी चढ़ाएँ॥
कोई यादगार उसकी यहाँ पर बनाएँ।
वहाँ मेला हर साल फिर से लगाएँ॥

(धर्मवीर हकीकतराय : डॉ० गोकुल चन्द नारंग)

इन्हीं डॉक्टर नारंग ने नई दिल्ली स्थित हिन्दू महासभा भवन के प्रांगण में हकीकतराय की संगमरमर की एक प्रतिमा स्थापित की है। किन्तु दिल्ली के नागरिकों का ध्यान अभी तक भी उस ओर नहीं गया है।

बटाला में हकीकतराय की पत्नी की समाधि बनाई गई है। वह स्थान तो भारत में ही है और यह सुना जाता है कि वहाँ के लोग प्रतिवर्ष वहाँ पर एकत्रित होकर उस त्याग की मूर्ति सती-साध्वी की समाधि पर श्रद्धा के फूल अर्पित करते हैं।

हमने पिछले अध्यायों में यह बताने का यत्न किया है कि इस घटना के लिए तत्कालीन मुसलमान हाकिम उतने दोषी नहीं थे; मुल्ला, मौलाना और काज़ी भी उतने दोषी नहीं कहे जा सकते, क्योंकि ये लोग तो केवल इस्लाम की आँधी में उड़े जा रहे थे।

इसमें यदि पूर्णतया किसी का दोष था तो वह था इस्लाम मजहब का। इस्लाम मजहब में दो ही बातें थीं। एक 'अल्लाहो अकबर' और दूसरा 'मोहम्मद रसूल अल्ला'। क्या मोहम्मद रसूल था ?

मोहम्मद मक्का के कुरेशी समुदाय का एक घटक था। यह समुदाय मोहम्मद के पैगम्बर बनने से बहुत पहले से मूर्ति-पूजक, वह भी बहुत बातों में बिगड़ा हुआ, समुदाय था।

मोहम्मद साहब को अपने कबीले वालों का चलन पसन्द नहीं आया। उसने उसमें सुधार करना चाहा। जब उसको अपने जीवनयापन के लिए किसी प्रकार का परिश्रम नहीं करना पड़ा और अनायास ही लाखों की सम्पत्ति अपनी पत्नी के पहले पति से प्राप्त हो गई तो उसने इन बातों पर विचार करना आरम्भ कर दिया। इसके लिए उसको समीप ही एकान्त में एक गुफा भी मिल गई और वहाँ जाकर वह घंटों इस पर विचार करता रहता था।

मोहम्मद साहब को किसी प्रकार की भी शिक्षा मिली हो, ऐसा कहीं उल्लेख नहीं मिलता। मस्तिष्क में जो कुछ भी समाया उसको उसने यथार्थ करना चाहा। सम्भवतया उसकी वाणी में रस और प्रभाव था। किन्तु फिर भी मक्का तथा उसके आस-पास के निवासी उसकी वाणी से प्रभावित नहीं हुए। मोहम्मद ने जब यह देखा तो उसको एक उपाय सूझा। उसने स्वयं को

खुदा का 'पैगम्बर' कहना प्रारम्भ कर दिया। तो भी उसको किसी ने पैगम्बर नहीं माना। कुछ लोग उसके मुरीद तो बने, किन्तु उनकी संख्या बहुत ही कम थी। मक्का में उनका कोई विशेष स्थान भी नहीं था, न कोई उनकी कुछ सुनता ही था। यह स्थिति देख मोहम्मद ने बल-प्रयोग करना चाहा तो उसका परिणाम विपरीत हुआ, इससे युद्ध हो गया। इस युद्ध में मोहम्मद को पराजय का मुंह देखना पड़ा और मक्का भी छोड़ भाग जाना पड़ा। मोहम्मद मक्का छोड़कर मदीना चला गया।

मक्का के रहने वाले तो मोहम्मद को बचपन से जानते थे किन्तु मदीना में उसको शायद ही कोई जानता होगा। वहाँ के लोगों के लिए वह सर्वथा अपरिचित था। उसने वहाँ जब अपने को पैगम्बर घोषित किया तो उसका मदीना के लोगों पर कुछ प्रभाव जम गया।

मोहम्मद जब मक्का से मदीना गया था तो उस समय उसके पक्ष में लड़ने वालों की संख्या नगण्य थी, इस कारण उसको पराजय का मुख देखना पड़ा था। मदीना में आकर उसने अपने साथियों की संख्या बढ़ाने के उपायों पर विचार किया। इसके लिए उसने अपने साथियों में यह घोषणा कर दी कि युद्ध में विजयी होने पर जो सैनिक जो कुछ भी लूट सकेगा उसमें से केवल पाँचवाँ भाग उसको देकर शेष सब-कुछ लूटने वाले का होगा। इस प्रकार एक भाग खुदा के रसूल का और चार भाग सैनिक के। मदीना के आवारा सैनिकों के लिए यह बंटवारा बहुत बड़ा प्रलोभन सिद्ध हुआ। उसका परिणाम यह हुआ कि उसके सैनिकों की संख्या में वृद्धि होने लगी। लूट का माल हथियाने के लालच में जब-जब भी लड़ाई होती तो वे सैनिक प्राण-पण से लड़ने लगते। इस प्रकार मोहम्मद का दबदबा बैठ गया।

कहा जाता है कि इसके बाद अल्ला ताला के एकमात्र रसूल

की उम्मत (अनुयायियों की संख्या) निरन्तर बढ़ती चली गई।

प्रोफेसर इनान ने मुसलमानों द्वारा फ्रांस पर आक्रमण के विषय में लिखा है कि योरोप पर छा जाने के लिए इस्लाम का यह अन्तिम प्रयास था। उस विषय पर प्रोफेसर इनान ने लिखा है—

"Passing the river Garonne, the Muslimah forces burnt all the towns at its banks, destroyed the fruits of the fields, and carried off captives innumerable."

(*Decisive Moments in the History of Islam* : M.A. Enan, p. 61)

अर्थात्—गैरान दरिया पार कर मुसलमान सेना ने सब नगरों को, जो नदी के किनारे थे, जला डाला। खेतों को उजाड़ दिया और अनगिनत लोगों को बन्दी बना कर वे लोग आगे बढ़ने लगे।

उसी इतिहास-लेखक ने आगे लिखा है—

"The troops he commanded had fallen into much disorder, being loaded with riches of every kind, and almost sinking beneath the burden of their spoils : fain would Abderrahman, and the other more prudent generals of the Muslimah force, have persuaded thier soldiers to abandon these impediments, and think only of thier horses and arms, but fearing to discourage them, and confiding in their constant good fortunes, they permitted the overweening confidence of other leaders to prevail, and despised the force of their enemies."

(*Decisive Moments in the History of Islam* : M.A. Enan, p. 62)

अर्थात्—जो सैनिक उसके अन्तर्गत थे वे अत्यन्त अस्तव्यस्त

हो गये थे। क्योंकि वे लूट के सब प्रकार के माल के बोझे से दबे चल रहे थे। उनके पास लूट का इतना सामान हो गया था कि उसको लिये फिरना उनके लिए असम्भव-सा हो गया था। अब्दुर्रहमान और अन्यान्य सालार चाहते थे कि सिपाही इस बोझे को छोड़कर केवल अपने घोड़ों की ही देख-रेख करें। किन्तु यह कहते हुए उनको डर लगता था कि कहीं इससे उनके सिपाही निराश होकर साहस न खो दें। इस कारण उनकी अच्छी किस्मत का भरोसा करते हुए वे चुप थे। और वे शत्रु को घृणा की दृष्टि से देखते हुए आगे बढ़ते चले।

प्रो० इनान ने आगे लिखा है—

"It is true that the covetous rage for booty incited the soldiers to unheard of efforts, and pressing the operations of the siege they succeeded in forcing an entrance, but almost under the eyes of Christian auxillaries now fast approaching."

(*Decisive Moments in the History of Islam* : M.A. Enan, p.63)

अर्थात्—यह सत्य है कि सैनिक लूट के लोभ में अतुल शौर्य का प्रदर्शन कर लड़ते थे। वे घेरे को तोड़कर भीतर घुस जाते। इस प्रकार वे ईसाई सैनिकों की दृष्टि में आ गए।

इनान ने आगे लिखा है—

"On the following day, the combat recommenced with fury at the hour of down, when the Muslimah captains, thirsting for blood and eager to obtain vengeance, penetrated deep into the ranks of the enemy; but in the hottest part of the battle, Abderrahman perceived that a great body of his cavalry had abandoned the field, and were hastening to defend the richs amassed in their camp, which was threatened by the enemy.

This movement threw the Muslimah force into confusion, and Abderrahman, dreading the disorder that must ensure, rushed from side to side, exhorting his people to their duty. Yet he soon found that it was impossible to restrain them."

(*Decisive Moments in the History of Islam*: M. A. Enan, p. 63)

अर्थात्—अगले दिन प्रातःकाल ही बड़े जोर से युद्ध आरम्भ हो गया। मुसलमान सिपाही पिछले दिन की पराजय का बदला लेने के लिए रक्त के प्यासे हो गए थे और वे बहुत दूर जाकर शत्रु की सेना में घुस गए। परन्तु अब्दुर्रहमान ने देखा कि जहाँ घमासान युद्ध हो रहा था उस स्थान पर बहुत-से घुड़सवार मैदान छोड़कर भाग रहे हैं। वे अपने लूटे हुए माल की रक्षा के लिए खेमों की ओर दौड़ रहे थे। सभी बन्दी और लूट का माल खेमों में रखा हुआ था। किन्तु उन खेमों में ईसाइयों ने धावा बोल दिया था। इससे सभी मुस्लिम सैनिकों में भगदड़ मच गई। अब्दुर्रहमान इधर-उधर दौड़-दौड़कर उनको भागने से रोकने का यत्न कर रहा था, किन्तु इसमें उसको सफलता नहीं मिल रही थी। वह शीघ्र ही समझ गया कि इस प्रकार सिपाहियों को रोकना असम्भव है।

वैसे तो मुसलमान सेना लूट के लालच में ही जी तोड़कर लड़ती थी।

हज़रत मोहम्मद ने मदीना में जाकर यह घोषित कर दिया कि सैनिकों द्वारा लूट का माल सब उनका ही होगा केवल पाँचवाँ भाग रसूल को देना होगा और तब से ही वे मुसलमान सिपाही वीरता से युद्ध में भाग लेते थे।

उन सिपाहियों ने जो बन्दी बना रखे थे उनमें जो औरतें और बच्चे थे वे गुलामों की मण्डी में अच्छे मूल्य पर बिक जाया करते थे।

अपने अनुयायिओं में मोहम्मद यह कहता रहता था कि अकेला अल्ला तो कुछ भी नहीं है। उसके साथ उसके रसूल (अर्थात् मोहम्मद स्वयं) की आवश्यकता स्वाभाविक है। बात यह थी कि परमात्मा को तो यहूदी ईसाई भी मानते थे। इस कारण अपने लिए सिपाहियों को लड़ाने के उद्देश्य से उसने बीच में अपना नाम लाना आवश्यक समझा था।

'साहि इस्लाम' में इस सम्बन्ध में एक हदीस इस प्रकार है—

A delegation of the tribe of Rabia visited Muhammad. He tells the delegates "I direct you to affirm belief in Allah alone" and then asks them : "Do you know what belief in Allah really implies ?" Then he himself answers "It implies testimony to the fact that there is no god but Allah, and that Muhammad is the Messenger of Allah." Other things mentioned are prayer, Zakat, Ramzan and that you pay one-fifth of the booty.

"Sahih 23"

(Quoted from—*Understanding Islam through Hadis* : Ram Swarup, p. 1-2)

अर्थात्—रबिआ कबीले का एक आयोग मोहम्मद से मिलने के लिए आया था। मोहम्मद ने उसको फरमाया, "मैं तुमको आज्ञा देता हूँ कि अल्लाह में विश्वास करो"। वह उनसे पूछता है, "तुम जानते हो कि अल्लाह में विश्वास का अर्थ क्या है ?" तब वह स्वयं ही उत्तर देता है, "इसका अर्थ है कि अल्लाह के अतिरिक्त अन्य कोई ईश्वर नहीं और उसका सन्देश लाने वाला मोहम्मद के सिवा अन्य कोई नहीं।" दूसरी बात है जकात (निर्धनों को दान), रमजान (व्रत) और लूट का भाग रसूल को देना।

अल्लाह के पैगम्बर होने के साथ-साथ मोहम्मद लूट में

पाँचवाँ भाग रसूल का कहना कभी नहीं भूलता था।

लूट मचाने के लिए जिहाद का नाम लिया जाता था। यदि लूटपाट के कार्य में अल्लाह का नाम न लिया जाता तो फिर वहाँ जो कुछ होता था वह वहाँ क्षम्य नहीं माना जाता था। इस कारण सब सैनिक-पट्टियों को जहाद (मजहबी जंग) का नाम दिया जाता था। यह आवश्यक होता था। इसके बिना यदि क्रूरता का व्यवहार शत्रुओं के साथ किया जाता था तो उसको स्वार्थ के लिए समझ मोहम्मद साहब की निन्दा होने लगती।

साथ ही जो लोग उसका साथ नहीं देते थे उनको डाँटा-डपटा जाता था। उदाहरण के रूप में कुरान (४८-१६) में एक घटना का उल्लेख पाया जाता है।

In fact, providing opportunities for easy booty was muhammad's way of rewarding his followers. Denying such opportunities to the lukewarm was his way of punishing them. For example, the desert Arabs did not participate in his expedition to Hudaibiyeh, where resistance was expected to be stiff. Muhammad told them that the next time, when it would be easy to win booty, they would say, "Permit us to follow you" but he would answer "Ye shall by no means follow us" the recalcitrant should earn their reward the hard way. Allah Himself directed Muhammad to "say to the desert. Arabs who lagged behind that" ye shall be called out against a people given to vehement war...then if you obey, Allah will give you a goodly hire (Quran : 48-16).

(Quoted from—*Understanding Islam through Hadis* : Ram Swarup, p. 102)

अर्थात्—सुगमता से लूट मचा सकने के अवसर देना मोहम्मद के लिए लड़ने वालों को सुगमता से इनाम देना होता

था। जो लड़ाई से संकोच करते थे उनको ऐसे अवसर देने से इन्कार किया जाता था। यह उनको एक प्रकार से दण्ड-सा होता था। उदाहरण के रूप में रेगिस्तान के अरब कबीले उसके हुदबिया कबीले पर आक्रमण में सम्मिलित होने में संकोच करते थे। वहाँ बड़े विरोध की आशा की जाती थी। मोहम्मद ने उनको कहा था "अगली बार जब लूटना सुगम होगा तुम मेरे पीछे आने की स्वीकृति माँगोगे परन्तु मैं कहूँगा तुम्हें मेरे पीछे लगने की आवश्यकता नहीं। संकोच करने वालों को इनाम पाने का मार्ग कठिन ही होगा। अल्लाह ने स्वयं मोहम्मद को आज्ञा दी है कि रेगिस्तान के अरबों से कह दे कि जो पीछे रह जाते हैं उनको फिर तब ही बुलाया जाएगा जब कठिन युद्ध का अवसर होगा…यदि तुम कहा मानो तो अल्लाह तुमको बहुत अच्छा भाड़ा देंगे।

लूट-पाट के अवसर युद्धों में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहन थे। इसी बात का अनुमोदन हदीस में भी किया गया है।

साहि इस्लाम में कहा है—

If you come to a township which has surrendered without a formal war and you stay therein, you have a share in the form of an award in (the properties obtained from) it. If a town disobeys Allah and the Messenger (and fights against the Muslims) one-fifth of the booty seized therefrom is for Allah and his Apostle and the rest is for you.
"Sahih 4346"

(Quoted from—*Understanding Islam through Hadis* : Ram Swarup, p. 103)

...The total number of expeditions was eighty-two, two every three months during Muhammad's stay in Medina. "Twenty-six are the Ghazwat in which the Holy Prophet himself participated and fifty-six are the Sariya (note 2283).

(*Understanding Islam through Hadis* : Ram Swarup, p. 108)

अर्थात्—ये आक्रमण और मुठभेड़ें धावा और युद्ध, दो प्रकार से होते थे। इनमें से एक 'घाजवात' और दूसरे 'सरिया' कहलाते थे। घाजवात वह मुहिम होती थी जिसका इमाम स्वयं रसूल होता था और वह उसका नेतृत्व करता था और सरिया वे होते थे जिनका नेतृत्व उनका नियुक्त नायब करता था। ऐसी कुल ८२ मुहिमें की गईं थीं। मोहम्मद के मदीने में रहने के काल में तीन मास में दो मुहिमें की गईं थीं। इनमें से २६ तो गजवात थीं जिनमें पवित्र अल्ला के रसूल ने स्वयं नेतृत्व किया था और ५६ सरिया थीं। (टिप्पणी २२८३)

इससे केवल एक ही परिणाम निकलता है कि उद्देश्य तो लूट-खसोट होता था और नाम जहाद होता था।

इसी कारण हमारा यह मत है कि हकीकतराय के कत्ल करने वालों को इतना दोष नहीं दिया जा सकता जितना कि इस प्रकार की मजहबी जंग छेड़ने वालों को दिया जाना चाहिए अथवा इस्लाम का नाम लेने वालों को दिया जाना चाहिए। और इससे भी अधिक दोष उन लोगों को दिया जाना चाहिए था जो इस प्रकार की विचारधारा रखने वालों को बर्दाश्त करते हैं तथा सीने से लगाते हैं।

हम सियालकोट तथा लाहौर के उन लोगों को भी दोषी समझते हैं जो इस कत्ल को देखकर वहाँ से रोते हुए गए थे। यह अन्याय हुआ था कोटि-कोटि हिन्दुओं के इस देश में शासन करने वाले कुछ लाख मुसलमानों द्वारा।

यह किस प्रकार हुआ, यह पृथक् विषय है। तदापि हिन्दू समाज को भी इस अपराध के लिए मुक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके ही परिणामस्वरूप आज भी बहुसंख्यक हिन्दू-समाज पर कुछ गिने-चुने नास्तिक शासन करते हैं। भगवान् कृष्ण ने तो हिन्दू को उसका धर्म बताया है—

परित्राणाय साधूनाम्...साधुओं अर्थात् भले लोगों का भय दूर करना ही चाहिए।

□□□